धरतीपुत्र चौधरी चरण सिंह

अनिरुद्ध पाण्डेय

प्रकाशक

ऋतु प्रकाशन

बी-162, नौएडा, सेक्टर-14, गाजियाबाद, उ० प्र०

धरतीपुत्र चौधरी चरण सिंह

अनिरुद्ध पाण्डेय

प्रथम संस्करण 1986

प्रकाशक :

ऋतु प्रकाशन
बी-162, नौएडा, सेक्टर-14, गाजियाबाद, उ० प्र०
RITU PRAKASHAN
B-162, Sector 14, NOIDA,
GHAZIABAD, U.P.

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य : 60.00 (साठ रुपये)

मुद्रक :
मलिक प्रेस, बी-1 गोपाल नगर,
आजादपुर, दिल्ली-110033

निवेदन

यह पुस्तक १९८४ के अन्त तक प्रकाशित हो जाने वाली थी। कतिपय अपरिहार्य कारणों से इसके प्रकाशन में विलम्ब हो गया। इस बीच भारतीय राजनीति ने विस्फोटक मोड़ लिया। परिवर्तनों की जरूरत थी, जो अब अगले संस्करण में ही सम्भव हो सकेगा।

15 फरवरी 1986

—लेखक

विषय-क्रम

व्यक्तित्व और विचार	7
मड़ैयों में प्रकाश	22
होनहार बिरवान के......	28
कॉलेज की शिक्षा और विवाह	36
समरांगण : राष्ट्रीय कांग्रेस में (1920 से 1939)	43
समरांगण : मेरठ में (1939 से 1941)	60
स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश मन्त्रिमण्डल में	76
उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री : भारतीय क्रांति दल (1967-1975)	96
भादों की अमावस्या : अष्टग्रह	115
जनता पार्टी का जन्म	124
जनता पार्टी और सरकार का विघटन	131
आने वाला कल	154

परिशिष्ट

एक ऐतिहासिक सिंहनाद	157
भारत के गृहमन्त्री चौधरी चरण सिंह से एक साक्षात्कार	204
पंडित जवाहर लाल नेहरू को लिखे दो पत्र	223
श्रीमती इन्दिरा गांधी को पत्र	236
लोकदल की राष्ट्रीय परिषद् में चौधरी चरण सिंह का अध्यक्षीय भाषण	241

चौधरी साहब द्वारा लिखित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

1. शिष्टाचार 1941
2. जमींदारी उन्मूलन 1947
3. Agrarian Revolution in U.P. 1958
4. India's Poverty and Its Solution 1964
   (Formerly Joint Farming X-rayed)
5. Economic Nightmare of India
6. भारत की आर्थिक स्थिति का भयावह स्वरूप

बल्लबगढ़ राज्य के अन्तिम
महाराजा नाहर सिंह जी

चौधरी साहब के माता-पिता

76 वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में बोट क्लब नई दिल्ली पर आयोजित ऐतिहासिक रैली को सम्बोधित करते हुए।

चौधरी दम्पति घर में

आमुख

क्या अतुल धन, ऊंचा पद और जीवन काल में प्राप्य प्रसिद्धि व्यक्ति को उस कोटि का गौरव प्रदान करते हैं कि सर्वसाधारण के सामने आदर्श प्रस्तुत करने के लिए उसका जीवन-चरित रखा जाय ? अथवा ऐसे व्यक्ति में देश-काल की सीमाओं को अतिक्रमण करने वाली कोई ऐसी विशिष्टता होती है, जो उसके जीवन के सदियों बाद तक आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा की स्रोत बन जाती है ?

कुछ लोग, विशेषकर चौधरी चरण सिंह के राजनैतिक समवयस्क, उनको उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा राजस्थान के जाट बहुल क्षेत्रों का नेता बता कर अपनी ईर्ष्याग्नि बुझाते हैं। इन लोगों के मतानुसार चौधरी चरण सिंह अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भ से ही बहुत महत्त्वाकांक्षी रहे हैं और स्वसाधन के लिए उन्होंने सर्वमान्य सिद्धान्तों तथा आदर्शों को 'बलाये ताक' रखने में कोई हिचक कभी भी प्रकट नहीं की है। चौधरी चरण सिंह को निकट से जानने वालों का मत इसके ठीक विपरीत है। उनका कहना है कि चौधरी चरण सिंह हर महान मानव की तरह महत्त्वाकांक्षी होते हुए भी ऊंचे से ऊंचे पद को सेवा का माध्यम मानते हैं तथा भारत की बहुसंख्यक अतिशोषित मानवता के कल्याण तथा अभ्युत्थान की सच्ची ललक के कारण ही उन्होंने पदों की आकांक्षा की है। वे जाट बहुल क्षेत्रों के नहीं, अपितु भारत के सभी पिछड़े और शोषित वर्गों के पेशवा हैं तथा इन्हें मानवोचित जीवनस्तर दिलाने के महान पुण्यकर्म में रत रहे हैं। उनका जन्म एक अति साधारण किसान परिवार में हुआ। अपने परिवार के जीतोड़ परिश्रम में उन्होंने हाथ बंटाया है। किसानों के दैन्य को वे जानते हैं। वे गांव की गलियों और खेतों में पले बढ़े। उन्हें भारत की इस सर्वशोषित अस्सी प्रतिशस मानवता के दु:ख-दर्द का व्यक्तिगत अनुभव है। उनकी रगों में महान स्वतंत्रता सेनानियों का खून है। इसीलिए देश को अतिशीघ्र श्रीसम्पन्न और शक्तिशाली बनाने की उनकी ललक अत्यन्त उत्कट है। उनके जीवन का हर क्षण उसी परम पुनीत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एकान्त निष्ठा से समर्पित है। ये वर्ग भारतीय प्रजातंत्र के विशाल बहुमत हैं। इनके अभ्युत्थान के बिना भारत के पुनरोत्थान की कल्पना थोथी है। चौधरी चरण सिंह इस तथ्य से दु:खी हैं कि आजादी के सैंतीस वर्षों में भी इन सर्वहारा लोगों की दशा में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया, जिससे आज भी वे दुर्दान्त गरीबी का जघन्य जीवन व्यतीत करने को विवश हैं।

इसका मूल कारण वे मौजूदा राष्ट्रनायकों का गांवों से सर्वथा अपरिचित होना मानते हैं। ये राष्ट्रनायक न कभी गांवों में रहे, न ही उनका गांवों से कोई लगाव है। साथ ही ये कर्णधार पश्चिम की चमक-दमक का बिना सोचे समझे अंधानुकरण करते हैं। पश्चिम की पूंजीपरक बड़े-बड़े उद्योगों की नीति भारत जैसे श्रमपरक कृषि प्रधान देश के लिए अनुपयुक्त है। जड़ से कट कर विकास सम्भव है ही नहीं। हमारे अभ्युत्थान की धुरी है—कृषि का सर्वांगीण विकास और घरेलू उद्योग-धंधों की वैज्ञानिक उन्नति। यही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की निश्चित राय थी। यही चौधरी चरण सिंह का मत और लक्ष्य है। उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही अनवरत संघर्ष-रत रहे। राष्ट्रीय कांग्रेस को उक्त लक्ष्य से विमुख जाते देखकर उन्होंने उससे अलग होकर भारतीय क्रान्ति दल की स्थापना की। कांग्रेस जैसे पुराने और व्यापक संगठन के विरोध में क्रान्ति दल की सफलता से स्थापना स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही। इसी से कांग्रेस का विकल्प उभरा। यह चौधरी चरण सिंह की जन्मजात प्रतिभा, संकल्प की दृढ़ता और निष्ठा का पर्याय है। ऐसा बहुजन हिताय व्यक्ति उच्च सिद्धान्तों और आदर्शों से समझौता कर ही नहीं सकता। न ही चौधरी साहब ने कभी ऐसा किया है। इसीलिए समूचे भारत के, कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेशों के, किसान उन्हें अपना मसीहा मानते हैं। जनमानस के उक्त अगाध विश्वास के बल पर चौधरी चरण सिंह अपने राजनैतिक जीवन के किसी भी मोड़ पर किंचित भी नहीं झुके, न ही कभी स्वसाधन के लिए आदर्शों से समझौता किया।

चौधरी चरण सिंह के जीवन की रेखा एकदम सीधी रही है। उनके बौद्धिक चिन्तन के आभरण में वह कभी टेढ़ी-मेढ़ी भी दिखायी पड़े तो मूलतः वह वैसी नहीं। वह अपार-अपार अभावग्रस्त जनसमूह की चेतना की कोंधती बिजली है, जो दिल्ली में उनके अठहत्तरवें जन्म दिन के अखिल भारतीय समागम को "न भूतो न भविष्यति" बना गयी। उसी समागम से उनके विरोधियों से अधिक सहयोगियों की स्पर्धा अशुभ रूप में भड़की। एक प्रकार से उसी की चिंगारी से जनता सरकार और पार्टी अन्ततः बिखरी। जो हो, महायुद्ध के एक जय-पराजय का असीमित महत्त्व कदापि नहीं होता। चौधरी चरण सिंह को स्वदेश की अभी बहुत सेवा करनी है। वह भारत के प्राचीन तपस्वियों की परम्परा के हैं— 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः।' आज भी उनके जीवन का हर क्षण सर्वहारा वर्गों के अभ्युत्थान के चिन्तन और काम में बीतता है। उनकी यह गांधीवादी बौद्धिकता—ज्ञान—और संकलपरत तपस्वियों की कर्मठता—कर्म—भारत के बाहर दूसरे देशों के सर्व-शोषित किसानों, मजदूरों और मानवता के लिए जाज्वल्यमान प्रकाश स्तम्भ बनेगा। उसी के आलोक से देश का विराट् बहुमत शक्ति और श्री-सम्पन्न होकर देश का गौरवध्वज प्राचीन काल

की तरह विश्व भर में फहरायेगा। चौधरी चरण सिंह का जीवन चरित इसीलिए सर्वदेशीय तथा व्यापक महत्त्व का है।

मैंने सन् 1951 के अन्त में मेरठ के सर्किट हाउस में दूर से उन्हें पहले पहल देखा था। वे उत्तर प्रदेश के सभासचिव के रूप में दौरे पर आये थे। मैं प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण काल में सदर तहसील में कुछ महीने बिताकर सरधना तहसील का हाकिम परगना नियुक्त हुआ था। सरधना के एक प्रगतिशील खेतिहर काज़ी नज़-मुद्दीन जी से मेरा अच्छा परिचय हो गया था। वे पुराने कांग्रेसी थे। वे चौधरी साहब की भूरिभूरि प्रशंसा किया करते थे। वैसे उनकी सर्वत्र प्रशंसा थी, लेकिन उनकी व्यक्तिगत नैतिकता की काज़ी जी द्वारा उन्मुक्त प्रशंसा ने ही मुझे उनकी ओर आकर्षित किया। विधान सभा में जमींदारी उन्मूलन विधेयक पर दिए गये उनके भाषण भी गम्भीर अध्ययन के परिचायक थे। मेरठ का वह साधारण राजनीतिज्ञ किसानों के शोषण और अंग्रेजों की भूमि-व्यवस्था के अन्यायपूर्ण पहलुओं का इतना गम्भीर समीक्षक था, जितना कोई अति मेधावी विशेषज्ञ ही हो सकता था। इसी अचरज भरे उद्‌गार से मैं उन्हें देखने सर्किट हाउस चला गया था। वहां कांग्रेस जनों की भीड़ में लम्बे, छरहरे, गोरे वर्ण के चौधरी चरण सिंह खादी के धोती-कुर्त्ता और गांधी टोपी में सहज ही एक ग्रामीण कार्यकर्त्ता से दिखे। उनमें कहीं कोई बनावट नहीं थी, न पद का दर्प। चेहरे पर सोच की चमक जरूर प्रकट थी, जिसकी गहराई से उनकी पलकें अर्द्ध-निमीलित थीं। करीब से देखने पर आंखों में तराश की एक भंगिमा तब भी दिखाई पड़ती थी। उसी से वे व्यक्ति को देखने भर से सही आंक लेते हैं। उनका योगी सा तपा शरीर और वर्ण तथा चिन्तन से दीप्तिमान चेहरा उनके व्यक्तित्व के प्रमुख आकर्षण थे। उनकी सूक्ष्म विनोदप्रियता और हल्की हँसी उनके अन्तर की पवित्र स्निग्धता की द्योतक थी। मैंने अपने किशोर वय में डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद के पास बैठकर उनकी अविस्मरणीय सादगी को देखा था। मुझे ठीक-ठीक याद है कि श्याम वर्ण के डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद धोती बण्डी में शुद्ध देहाती किसान लगते थे। उनका मेरे मन पर आश्चर्यकारी प्रभाव पड़ा था। ठीक वैसा ही प्रभाव चौधरी चरण सिंह का पड़ा। मन में एक अज्ञात भाव भी उठा था, जिसकी भाषा छः सात वर्षों बाद जब मैं मेरठ में अतिरिक्त जिलाधिकारी के पद पर दुबारा गया, तब प्रकट हुई कि किसान-सा दिखने वाला वह धरतीपुत्र गांवों में बसने वाली भारत की विशाल सर्वशोषित मानवता के असह्य दुःख की जीवन्त भाषा बनेगा—क्रांति का अग्रदूत, महात्मा गांधी के सूत्रों का विश्लेषण कर उसको अमली जामा पहनाने वाला। भारत को उसकी तब भी बड़ी जरूरत थी और हमारी आर्थिक कुनीतियों के कारण आज वह पहले से अधिक कितनी बढ़ गयी है।

प्रशासन की ऊंची सीढ़ियों पर मुझे जिम्मेदार व्यक्तियों से सुनने को मिला कि

चौधरी चरण सिंह कान के कच्चे हैं। यह निर्मूल बात नहीं थी। ईमानदार आदमी वैसा हो जाता है। आज़ादी का एक दशक बीतते-बीतते शासकीय कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतों की बाढ़ आने लगी थी। कर्मचारी दासताकाल की परिपाटियों में पले थे। स्वतंत्रता से जनता की आकांक्षाएं स्वाभाविक ही बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं। राजनीति भी स्वतंत्रता-संघर्ष के दिनों की त्याग-तपस्या छोड़ कर घोर स्वार्थपरक और चांदी बटोरने की होती जा रही थी। अवसरवादिता की प्रेरणा से शासकीय कर्मचारियों ने भी इस घुड़दौड़ में दांव लगाये, लगाते ही। नेताओं को इसमें अपनी ढाल मिल गयी। अपनी सुरक्षा के लिए वे हर वर्ग के कर्मचारियों के विरुद्ध सही से सैकड़ों गुना अधिक झूठी शिकायतें कराने लगे। साधारण राजनीतिज्ञ स्थानीय कर्मचारियों पर अपना रोब गालिब करने के लिए इसे 'फुलझड़ी छोड़ना' बताया करते थे। चौधरी चरण सिंह भारत की पुरातन नैतिकता के कट्टर पोषक थे। आज़ादी के पहले से वे सार्वजनिक जीवन के भ्रष्टाचार से जूझते आ रहे थे। उनका निश्चित मत है कि भारत जैसे गरीब देश में जहां सरकारी कर्मचारियों का वेतनमान साधारण जनसमाज की आय से अपेक्षाकृत बेहतर है, कर्मचारी वर्ग में भ्रष्टाचार अक्षम्य है। पूंजीवादी परम्परा में भ्रष्टाचार को कोई पूरा रोक नहीं सकता, उसे अनुशासित जरूर किया जा सकता है। इसलिए सरकारी तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को कठोर नैतिकता का आदर्श निभाने के वे पक्ष में हैं। सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों पर वे बहुत ध्यान देते थे। दासता काल के कर्मचारियों में चारित्रिक अनैतिकता भी कम नहीं थी। चौधरी साहब हर अनैतिकता के उतने ही बड़े दुश्मन हैं, जितने पक्षपात, घूस, बेईमानी, कुनबापरस्ती और अनुचित मुनाफाखोरी आदि के। इसके विरुद्ध युद्धस्तरीय अभियान चलाकर उन्होंने अल्पकाल में ही अनुकरणीय दिशा-निर्देश का काम किया। लेकिन मैं अकाट्य रूप से कह सकता हूँ कि उनका ईमानदार विवेक झूठ सच की सही जांच करके ही किसी के पक्ष-विपक्ष में निर्णय करता था। इसीलिए बड़ी कड़ाई के बाद भी सजा कम लोगों को मिली। उनकी जांच से अपराधी बच नहीं पाते थे। भ्रष्टाचारी उनके नाम से कांपते थे। यह स्वच्छ प्रशासन में उनकी दृढ़ता और कट्टर आस्था का फल है, आपातकाल में जैसा नाटक व्यक्तिगत स्पर्धा के कारण किया गया, वैसा उन्होंने कभी नहीं होने दिया। आपातकाल के सताये हुए प्राय: शत-प्रतिशत शासकीय कर्मचारी अदालतों में विजयी रहे। सरकार की प्रतिष्ठा और धन का आपातकाल की धींगामुस्ती से बड़ा नुकसान हुआ। यह चौधरी चरण सिंह का अनुकरण करके ही किया गया था। लेकिन चौधरी चरण सिंह सा पारदर्शी विवेक कहां था? न्याय की तराजू में कभी ढील नहीं आने पायी। इसीलिए समूचे देश पर उनकी भ्रष्टाचार निवारण की अमिट छाप पड़ी। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण भी था। स्वयं

बेदाग रह कर ही दूसरों की अनैतिकता रोकी जा सकती है । इस कसौटी पर भारत भर में कोई वर्तमान राजनीतिक उन जैसा खरा नहीं उतर पाता है ।

चौधरी चरण सिंह मूलत: एक चिन्तनशील प्राणी तथा विचारक हैं । उनका विद्यार्थी जीवन वैदिक संस्कृति और धर्म के अध्ययन पर पनपा । वे प्राचीन भारतीय संस्कृति में अगाध विश्वास रखते हैं । उनका बाद का जीवन आज़ादी के संघर्ष की और आज़ादी के बाद से सक्रिय राजनीति में बीता । उनका जीवन अगर स्वतंत्र भारत में पला बढ़ा होता तो शायद वे एक महान सामाजिक दार्शनिक हुए होते । राजनीति में भी गांधीवादी होने के नाते उन्होंने व्यक्ति और समाज की आर्थिक मुक्ति पर ध्यान दिया । उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए शासकीय पदों का माध्यम बहुत जरूरी था । अर्वाचीन शासन का रूप भी बदला हुआ है । शासनतंत्र राजकर्मचारियों की कर्मठता और दक्षता पर आधारित है । आज राष्ट्रपति या प्रधान अथवा मुख्यमन्त्री को युद्ध क्षेत्र में जाकर सैन्य संचालन नहीं करना पड़ता है । न ही किसी उपद्रव में स्वयं भाग लेकर उसका निराकरण करना पड़ता है । उसे जनता की अभिलाषाओं-आकांक्षाओं के अनुरूप रण का या किसी भी सार्वजनिक काम का दिशा-निर्देश करना पड़ता है । चौधरी चरण सिंह ने प्राचीन और अर्वाचीन के समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत किया है । उत्तर प्रदेश में गृह मन्त्री के रूप में उनका प्राय: पहला काम भिण्ड से मिले इटावा और आगरा जिलों में यमुना के बीहड़ खादर में जाकर उस भू-भाग को देखना था, जहां से खतरनाक डकैतों का कार्यक्रम उभरता था । किसी दूसरे राजनेता ने इतने जोखिम का काम करने में ऐसी कर्मठता नहीं दिखायी । कुछ लोग इसीलिए उनके संदर्भ में महा-मन्त्री चाणक्य का नाम लेते हैं, इस संदर्भ से उनकी विलक्षण कर्मठता, नीति-निपुणता और दूरदर्शिता की प्रवृत्ति अमान्य नहीं की जा सकती । लेकिन इस उल्लेख का ध्येय अगर उनकी राजनीति को कुटिल बताना है, तो वह नितान्त मिथ्या है । उनमें कुछ भी ओछा नहीं । उनके पैंतरे और दांव सच्चे तथा खरे रहे हैं । आंख में धूल झोंककर उन्होंने किसी को कभी नहीं पछाड़ा । बड़ों-से-बड़ों ने उन्हें धोखा जरूर दिया । इसी-लिए एकांत में कभी-कभी उनका चिन्तक मन दु:खी स्वर में मुखर हो उठता है— "मैं मौजूदा राजनीति के काबिल नहीं था । स्वतंत्रता की रणभेरी ने मुझे पुकार लिया ।" उनका मन स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की कुटिलता का ध्यान कर अक्सर भर आता है । ऐसे समय वे उत्साह से उत्साहपूर्ण बात करते हुए भी अचानक चुप हो जाते हैं ।

क्या हर महान पुरुष के सपनों का अन्त दु:खान्त होता है ? मैंने अपने जीवन में महात्मा गांधी, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा लोकनायक जयप्रकाश नारायण जैसे महामानवों के उत्कर्ष को देखा है । कवि गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर और संत विनोबा भावे के औदार्य को भी समझा-बूझा है । उनमें किसका सपना

सच हो पाया ? क्या हर महामानव के लक्ष्य अप्राप्य होते हैं और क्या लक्ष्य-भेद के उनके प्रयत्न क्षोभपूर्ण विषमताओं से भरे रहते हैं, जिससे उनके हृदय में असंतोष की ज्वाला धधकती रहती है ? क्या उनकी सांसें उसी आंच से जल-बुझती हैं । ऐसे मनीषियों के जीवन की सही समीक्षा क्या सम्भव है ? फिर भी अपनी बौद्धिक आस्थाओं और उनको पाने के अनवरत अध्यवसाय के कारण वे महान पथनिर्माता बने । वे आगामी कल के लिए अपने विचार और चिन्तन समय की रेती पर छोड़ गये । चौधरी चरण सिंह के भी सपने कहां पूरे हुए ? वे सर्वशोषित मानवता तथा भारत की प्राचीन नैतिकता के लिए जीवन भर संघर्षरत रहे । अभी संन्यास के प्रथम चरण में भी वे कर्मरत हैं। उन्होंने महात्मा गांधी के दरिद्रनारायण की समिधा को जगाया है । यह प्राचीन भारत की परम्परा की पुकार है, जिससे अलग इस सर्वहारा देश के पुनरुत्थान का दूसरा रास्ता नहीं। इस सर्वशोषित मानवता—भारत के किसानों, मजदूरों, दूसरे उत्पादक श्रमिकों—की युग-युग की पीड़ा चौधरी चरण सिंह के रूप में ज्वाला बन कर फूटी । वह परम शुभ ज्वाला पीड़ित मानवता के गौरवपूर्ण उत्थान के लिए देशकाल की परिधि पार कर मानव मात्र के तमिस्र को मिटाने का सदा संदेश देती रहेगी ।

किसी भी व्यक्ति, विशेषकर महान व्यक्ति, के जीवन के तीन रूप होते हैं। पहला वह जिसमें वह सबके सामने आता है और जैसा सब उसे जानते हैं । दूसरा वह जिसे उसके आत्मीय और निकट सम्बन्धी जानते हैं । तीसरा रूप उस व्यक्ति के निजी विचारों, भावनाओं और सपनों का होता है । साधारणतया निजी पत्रों, डायरी आदि से इन भावनाओं की मनोवैज्ञानिक जानकारी हो पाती है । उसी से उसकी बौद्धिकता की परत दर परत देखी जा सकती है । चौधरी साहब ने कोई डायरी रखी नहीं । उनके निजी पत्रों का कोई संकलन उपलब्ध नहीं । उनके सार्वजनिक कार्यकलाप की फाइलें जरूर उनके पास सफाई से सुरक्षित हैं । उन फाइलों को सांगोपांग पढ़ना बरसों का काम है । मैंने यथासम्भव सम्बन्धित फाइलों का उपयोग किया है । मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य चौधरी साहब से इस जीवनी के विभिन्न पहलुओं पर बातचीत कर तथ्यातथ्य को जांच लेना रहा है। यह सौभाग्य उनके विस्तृत जीवनीकार को, जो देर अबेर अवश्य आएगा, मिले या नहीं । इसके लिए मैं उनका तथा माता जी श्रीमती गायत्री देवी का अत्यन्त अनुगृहीत हूं ।

एक महान धरती पुत्र का यह जीवन चरित भारतवर्ष के जन-जन को आग्रह-पूर्वक समर्पित है ।

2 अक्तूबर 1984 —**अनिरुद्ध पाण्डेय**

व्यक्तित्व और विचार

चौधरी चरण सिंह का नाम समूचे हिन्दुस्तान के ग्रामवासियों में एक अभिनव जागरूकता की सनसनी अनायास ही पैदा कर देता है। एक ग्रामीण कवि ने इसी लिए उन्हें क्रान्ति की ज्वाला बताया है। सदियों के सर्वशोषित किसान-मजदूरों को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दिव्यवाणी से एक नया मनोबल मिला था, जब स्वतंत्रता से कुछ काल पहले उन्होंने यह कहा कि इस देश का राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री मजदूर और किसान हो। महात्मा गांधी का उद्देश्य बिल्कुल साफ था कि भारत के 6 लाख गांवों में बसने वाले किसान और मजदूर इस देश की सर्वाधिक जनशक्ति हैं और उन्हीं के सुखी और समृद्ध होने पर भारत शक्तिशाली देश बन सकता है। उनका अभीष्ट था कि उन्हीं के बीच में उपजा राष्ट्रनायक ही उनके दुःखों को सही-सही समझ सकेगा और अपने अनुभवजन्य भावनाओं से उनके दुःखों को शीघ्रातिशीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेगा। गांधी जी असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न महामानव थे। एक सामन्ती परिवार में वे पैदा हुए थे, विलायत जा कर उन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की थी। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने बड़े-बड़े भारतीय व्यावसायिक संस्थानों के मुकदमों से अपनी वकालत शुरू की थी। किन्तु इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका और हिन्दुस्तान में अपने देशवासियों, विशेषकर ग्रामवासियों की दशा देखकर वे निश्चय ही करुणा से अभिभूत हो गये होंगे। 'बहुजन हिताय' महामानव का मेरुदंड है। गांधी जी देश की बहुमत आबादी दरिद्रनारायण के प्रतीक बन गये। किसानों की तरह वे झोंपड़ियों में आश्रम बना कर रहने लगे। 6 पैसे (तब का) वह एक वक्त के सादे भोजन पर व्यय करते थे। अपने हाथ से सूत कात कर अपने पहनने का कपड़ा बनाते थे और अपना छोटा-बड़ा सारा काम स्वयं ही करते थे। उनके आश्रमवासी सहयोगी भी इसी अनुशासन में रहते थे। रेल का सफर भी बापू तीसरे दर्जे में, जिसमें मुसाफिर भेड़-बकरी की तरह कसे रहते थे, करते थे। बापू विलासिता के हर सुख-सुविधा और प्रदर्शन से दूर रहते थे। गांव के गरीब की सादगी, सच्चाई और स्वार्थ रहित उच्च मान्यताओं तथा मूल्यों—नैतिकता—का उन्होंने आदर्श चरितार्थ किया। उनके जीवनयापन के तरीके से स्तब्ध होकर भारत ने ही नहीं, सारे विश्व ने उन्हें महात्मा पुकारा। यह ऋषियों का जीवन था, भारत में अनादि काल से चली आ रही ग्राम-परक संस्कृति की परम्परा थी। जड़ से कट कर कोई पनप नहीं सकता। राष्ट्रपिता ने जड़ की पवित्रता से स्वतंत्रता संघर्ष के आन्दोलनों को सजाया और उसी परम्परा में कृषि तथा कुटीर और

घरेलू उद्योगों द्वारा आर्थिक विकास पर अत्यधिक बल दिया। यह नहीं कि वे इग्लैण्ड या यूरोप की औद्योगिक प्रगति की उपलब्धियों से अपरिचित थे। लेकिन उसमें सन्निहित विस्फोटक तत्वों को वह प्रथम विश्व युद्ध में देख चुके थे और उसके अशुभ पक्ष—हिंसा और विनाश—के वह कदापि समर्थक नहीं हो सकते थे। उन्होंने अहिंसा के विश्व-कल्याणकारी दर्शन को अपनाया। इस दर्शन में साध्य की तरह साधन भी परम पवित्र होना जरूरी था।

स्वतंत्रता संघर्ष रत बापू के प्रथम पंक्ति के सहयोगियों ने उनके आदर्शों को अधिकाधिक अपनाने की हर कोशिश की। लेकिन स्वतंत्रता के बाद जल्दी ही बापू के दिवंगत हो जाने पर इक्के-दुक्के ही उन आदर्शों पर अडिग रह सके। उनमें हमारे पहले राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद और बारदोली के महासेनानी सरदार वल्लभ भाई पटेल का नाम सर्वोपरि है। हमारे पहले प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ठोस गांधीवादी कभी नहीं थे। विश्व की तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के वे सजग दर्शक थे और इस विषय में वे महात्मा गांधी के पूरक माने जाते थे। शायद इसीलिये बापू ने उन्हें प्रधानमंत्री मनोनीत किया। पंडित नेहरू अपनी वंशानुगति और इंग्लैण्ड की शिक्षा-दीक्षा के कारण पश्चिम के औद्योगिक विकासों से बेहतर प्रभावित थे। रूस का औद्योगिक विकास आधुनिकतम था और विज्ञान तथा टेकनोलाजी के प्रयोग में यूरोपीय देशों से कहीं आगे था। पण्डित जी पर उसका असर जादू की तरह पड़ा। उन्होंने भारत के पंचायती प्रजातंत्र में रूसी समाजवाद का सपना संजोया। पंचायती और साम्यवादी प्रणालियां परस्पर विरोधी हैं। एक का आधार नैतिकता है, दूसरे का शुद्ध भौतिकता। एक नीचे से क्रमशः ऊपर को बढ़ता है, दूसरा ऊपर से छन कर नीचे आता है। पंडित नेहरू गांव में पैदा नहीं हुए थे, गांव में पले-बढ़े नहीं थे। उन्होंने भारत की ग्राम्यपरक संरचना को त्याग कर रूस की पांच साला योजनाओं का अनुकरण किया और भारी औद्योगीकरण द्वारा हिन्दुस्तान को जल्दी से जल्दी समुन्नत करना चाहा। इससे सिंचाई, विद्युत उत्पादन, सामरिक महत्व के यंत्रों तथा मूलगत मशीनों को बनाने में देश ने अपेक्षाकृत उन्नति भी की। यह जरूरी भी माना जाएगा। लेकिन हिन्दुस्तान की दुर्दान्त गरीबी और उससे उत्पन्न विकट समस्याओं का इससे निदान नहीं मिलता। हमारे देश की समस्याएं थीं—भीषण गरीबी, बेरोजगारी या अर्द्ध-बेरोजगारी तथा जन-जन में घोर आर्थिक विषमता। साथ ही सदियों की गुलामी से अथवा भाग्यवाद में काहिलों की तरह विश्वास करने के कारण कड़ी मेहनत न करने का हमारा राष्ट्रीय चरित्र बन गया था। इस परिवेश में हमें मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकता—खाना, जुटाने के लिए काम चाहिये था। हमारी अपार जनसंख्या में वह श्रम-परक उद्योगों से ही प्राप्त किया जा सकता था। पूंजीपरक आधुनिकतम बड़े उद्योगों को बटन दबा कर चलाया जाता है। बटन दबाने की तकनीक से

चलने वाले उद्योगों की संख्या में वृद्धि से लाखों करोड़ों हाथों को रोजगार कहां मिलता ? अतः गरीबी मिटाने के लिए पूंजीपरक आधुनिकतम भारी उद्योग निरर्थक थे । हमारे पास पूंजी भी सीमित थी । भौतिक सुख-सुविधा और वैभव प्रदर्शन के उत्पाद एक वर्ग विशेष को ही लाभ पहुंचा सकते थे । हमारी वास्तविक समस्याएं उनसे कदापि हल नहीं होतीं । उल्टे हमारी संस्कृति और सभ्यता की नींव—नैतिकता—बलिदान हो गयी । आज जो देश में सर्वत्र राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास दिखायी पड़ रहा है, उसके लिये वही नीति मूलतया जिम्मेदार है । चौधरी चरण सिंह का यही प्रतिपाद्य है ।

हमारी उन्नति के सीधे रास्ते थे कृषि की फी एकड़ उपज बढ़ाना और उस एकड़ पर श्रम करने वालों की संख्या को न्यूनतम रखना । ऐसा घरेलू और कुटीर उद्योगों के सम्यक् विकास से ही सम्भव हो पाता । अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा धनी देश इसलिए है कि वहां की कृषि में सौ में से पांच व्यक्ति लगे हैं । शेष दूसरे धंधों और रोजगार में हैं । इसलिए चौधरी चरण सिंह का कहना है कि अगर परिवार में चार भाई हैं, तो एक ही कृषि में लगे । शेष तीन भाई दूसरे धंधों में उद्यम करें और अपनी जीविका कमायें तथा परिवार की आमदनी बढ़ायें । यही नहीं, अगर पिता स्वस्थ और मेहनत करने लायक हो तो चारों पुत्र कृषि का काम उनके लिए छोड़ दें । यह तभी सम्भव है, जब चारों या तीन पुत्रों को घरेलू उद्योग-धंधों से जीविका मिले । महात्मा गांधी के सूत्र घरेलू उद्योग-धंधों का यही भाष्य है । इस अनुभवगम्य राय के विपरीत पंडित जवाहरलाल नेहरू स्नातक युवकों को यह सीख दिया करते थे कि पढ़-लिख कर खेती में लगो । इससे न कृषि की उपज बढ़ती, न ही कृष्योत्तर कुटीर उद्योगों का विकास होता । उद्योगों का विकास कृषि से बची श्रमशक्ति पर निर्भर है । पंडित जवाहरलाल नेहरू अपनी साम्यवाद लाने की उड़ान में कृषि के इस मूल सिद्धान्त को भूल गये । चौधरी चरण सिंह ने इस सिद्धान्त को दूसरी तरह भी स्पष्ट किया है । उनके मतानुसार हमारी प्रगति टेलीविजन सेटों, टेलीफोन, इस्पात के आधुनिक उपकरणों, कारों आदि से नहीं प्रत्युत देश में निम्नतम व्यक्ति के लिए खाना, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि से आंकी जायेगी । भारत की तीन चौथाई आबादी की यही समस्या है । अतः कृषि और उसके पूरक घरेलू उद्योग-धंधों द्वारा देश की आर्थिक समृद्धि पर राष्ट्रपिता की तरह चौधरी चरण सिंह का सर्वाधिक जोर है ।

यह निर्विवाद है कि क्रय शक्ति बढ़ने पर ही गांव के किसानों और मजदूरों का जीवन स्तर ऊंचा उठाया जा सकेगा । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पहले भारत के किसानों की प्रधानतया कुटीर उद्योगों के कारण ऐसी ही उन्नत दशा थी । स्वरोजगार से वह सुखी थे । विदेशी अंग्रेजी शासन ने उनका अभूतपूर्व शोषण किया । अंग्रेजों ने स्वरोजगार को बेरहमी से समाप्त किया । इस तरह किसान बेहद गरीब हो गये । आजादी के सैंतीस वर्ष बाद भी हमारी औद्योगिक कुनीति के कारण वह गरीबी मिटी

नहीं, बल्कि और वीभत्स हो गयी । मुद्रास्फीति और नगरों को सजा कर उसे ढांपने की कोशिश की गयी है । हंस की खाल ओढ़ कर गीदड़ कदापि हंस नहीं बन सकता ।

रूसी योजनाओं से उधार ली हुई यह धारणा कि कृषि और उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं, गलत साबित हुई है । कृषि प्रधान देश में जहां सर्वसाधारण का बहुमत गरीबी रेखा से नीचे या उसके आसपास हो, औद्योगिक उत्पादन उतना उपादेय नहीं, जितना अधिक लोगों द्वारा उत्पादन । नेहरू की भारी उद्योगों की नीति का चौधरी चरण सिंह ने यही विकल्प प्रस्तुत किया है । नेहरू ने इस विकल्प की उपादेयता को अन्ततः महसूस भी किया । नवम्बर सन् 1963 में संसद में अपने भाषण में उन्होंने स्वीकार किया कि "मैं अधिकाधिक महात्मा गांधी के बारे में सोचने लगा हूं ।...मैं पूरी तरह से आधुनिक मशीन का प्रशंसक हूं और बेहतरीन मशीन व बेहतरीन तकनीक चाहता हूं । लेकिन हमारे देश में हालत यह है कि हम आधुनिक युग में चाहे जितना बढ़ जाएं, उसका बहुत दिनों तक हमारे लोगों की बहुत बड़ी संख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । उन्हें उत्पादन में भागीदार बनाने के लिए कोई और उपाय करना होगा, चाहे उत्पादन यंत्र आधुनिक तकनीक के मुकाबले में बहुत कुशल न हो ।"

यह स्वीकारोक्ति उनके जीवन के अन्तिम दिनों में आयी । उसके छः माह बाद ही वह दिवंगत हो गये ।

नेहरू के बाद सन् 1965 के पाकिस्तान आक्रमण के समय 'जय जवान, जय किसान' का परम शुभ नारा उठा । वह अत्यन्त अल्पकालीन साबित हुआ । उसके बाद फिर वही नेहरू की उधार-चिन्तन वाली औद्योगिक नीति चली, जिससे हमारी गरीबी बढ़ती ही गयी । विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार आज भारत बांग्लादेश और इथोपिया को छोड़ कर दुनिया का सबसे गरीब देश है । भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार भी लगभग पचास प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने को मजबूर हैं । यह दुर्दशा आजादी के सैंतीस वर्ष बाद है जब कि इसी अवधि में चीन ही नहीं, द्वितीय विश्व युद्ध से तबाह असाम्यवादी देश जापान, जर्मनी, फ्रांस, कोरिया आदि दुबारा उन्नति के शिखर को छू रहे हैं।

चौधरी चरण सिंह ने अपनी विकल्प की आर्थिक नीति को गांधीवादी परिवेश में बहुत सच्चाई से प्रस्तुत किया है । उसका सही अनुकरण करके ही देश गरीबी से त्राण पा सकता और आबादी के अस्सी प्रतिशत लोगों को खुशहाल कर शक्तिशाली बन सकता है । इससे देश में आर्थिक विषमता से उत्पन्न असंतोष और वर्ग-संघर्ष की भावना समाप्त नहीं तो बहुत कम हो जायेगी । शक्तिशाली वर्ग, धन्ना सेठों और प्रभुता के मद से चूर राजनेताओं के लिए यह जरूर असह्य साबित होगा शायद इसीलिए देश के मौजूदा सत्ताधारी कर्णधार, जो देशहित नहीं अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सर्वोपरि रखते हैं, चौधरी साहब की अर्थनीति पर कई तरह से आक्रमण करते हैं ।

सत्ताधारियों के पक्षधर एक अर्थशास्त्री ने यह दलील दी है कि पूंजीसंग्रह विज्ञान तथा टेकनोलाजी के उचित प्रयोग पर निर्भर है। वह कहते हैं कि श्रम-प्रधान तकनीक इतनी बचत नहीं पैदा कर सकती कि राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि और जीवन स्तर उठाने के लिए आवश्यक पूंजी-संग्रह में सहायक हो सके। चौधरी चरण सिंह का मत है कि भारत की मौजूदा दैन्य दशा में कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने के बजाय देश को रोजगार में वृद्धि की दिशा में ले जाना चाहिये। इससे राष्ट्रीय आय में अपने आप वृद्धि होगी। यह निर्विवाद है कि आम जनता की क्रयशक्ति में वृद्धि के बिना औद्योगिक उत्पादनों की वृद्धि सम्भव ही नहीं। श्रम-प्रधान उद्योग में श्रमिक ही सबसे बड़ा हिस्सा प्राप्त करता है, जैसे पूंजी प्रधान ईकाई में पूंजीपति। जरूरत पूंजीपतियों की संख्या बढ़ाने की नहीं, स्वरोजगार से अधिकाधिक लोगों की गरीबी दूर करने की है। सैंतीस वर्षों के प्रयोग में देश को अनुभव हो गया है कि पूंजीपरक औद्योगिक नीति देश के लिए अशुभ ही नहीं घातक है। वह असंतोष, अराजकता और हिंसा की कारक है।

साम्यवादी आलोचना यह है कि चौधरी चरण सिंह की नीति से किसान और खेतिहर मजदूर शक्तिशाली हो जायेंगे और देश में वर्ग-संघर्ष का सूत्रपात होगा। देश की आबादी के अस्सी प्रतिशत जनसमूह के शक्तिशाली हो जाने से वर्ग संघर्ष कैसे उत्पन्न होगा, यह समझ में आने वाली बात नहीं हैं। उसी तरह यह तर्क कि छोटे और कुटीर उद्योगों की नीति बीसवीं सदी में अठारहवीं सदी को लाने का प्रयास है, नितान्त बेमानी है। यह पश्चिमी और रूसी अर्थव्यस्था और धारणाओं को बिना समझे-बूझे देश पर आरोपित करने का तथाकथित प्रगतिशील अर्थशास्त्रियों का बेसुरा अलाप है। भारत की अधोगति का हल न पूंजीवादी व्यवस्था में है, न साम्यवादी में। दोनों की प्रकृति हमारे अनुकूल नहीं। इसका समन्वित रूप गांधीवादी विचारधारा ही इस देश के करोड़ों लोगों को बेहतर जिन्दगी देकर देश को गतिमान बना सकता है। चौधरी चरण सिंह के आर्थिक दर्शन का यही परिप्रेक्ष्य है। एक जगह उन्होंने कहा है कि "यदि देश को बचाना है तो नेहरूपंथी मार्ग को गांधीवादी रास्ते पर लाना होगा"।

यह नहीं कि वे बड़े उद्योगों के महत्त्व को बिलकुल नकारते हैं। उनका प्रतिपाद्य है कि इस दुर्दान्त गरीबी के देश में सबको रोजगार देना है, जो कृषि पर लोगों का भार कम कर कुटीर उद्योगों में लगाने से ही सम्भव होगा। बड़े उद्योगों की जरूरत सामरिक महत्त्व के उपकरणों के लिए, बिजली के उत्पादन तथा दूसरी मूलगत मशीनों को बनाने के लिए जरूरी है। इसलिए वे यह समझौता चाहते हैं कि बड़े उद्योग उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करें, जो लघु उद्योगों की क्षमता के बिल्कुल बाहर हों और लघु उद्योग भी उन वस्तुओं का उत्पादन सख्ती से न करें, जो घरेलू उद्योग-धन्धों से बनाये जा सकते हैं। गांव के किसानों, दस्तकारों और शिल्पकारों के लिए यह सोच कितनी

कल्याणकारी है ? अर्थशास्त्र की दृष्टि से इसमें कहीं कुछ भी असंगत नहीं । हमारी व्यापक बेरोजगारी का हल भी यही है ।

भारत के लक्ष-लक्ष शोषित, किसान, मजदूर और गरीबों की समुन्नति के लिए चौधरी चरण सिंह की ललक जितनी तीव्र है, उतनी ही प्रभावकारी उनकी नीतियां हैं । उनकी रगों में पहली राज्य क्रांति के अमर स्वतंत्रता सेनानी का खून प्रवाहमान है । वे हिम्मत हारने वाले व्यक्ति नहीं, प्रत्युत परम साहसिक और निर्भीक हैं । गांधीवादी आर्थिक विचारधारा और नीतियों के प्रसार के लिए वे मौजूदा परिस्थितियों में राजतंत्र का माध्यम जरूरी मानते हैं । उनका लक्ष्य जल्दी से जल्दी शोषण को समाप्त कर देश को शक्तिशाली और प्राचीन काल की तरह दुनिया का शिरमौर बनाना है । उत्तर प्रदेश में इसी ललक से उन्होंने जमीन्दारी उन्मूलन और भूमि सुधारों के कानून को वह रूप दिया कि आभिजात्य वर्ग ही नहीं, तथाकथित परम प्रगतिशील साम्यवादी विचारक भी उनके कृतित्व को आंखें फाड़ कर देखते रह गये । "जिसकी करनी, उसकी भरनी"—यह है, भूमि सुधारों का उनका मूलमंत्र । धनी किसानों के खेतों को बटाई या मालगुजारी पर लेने वाले प्रायः शत-प्रतिशत भूमिहीन किसान हरिजन थे—गांवों के सर्वाधिक शोषित खेतिहर मजदूर । चौधरी चरण सिंह ने उन्हें कानूनन उनकी जोत की भूमि का सीरदार-स्वामी बना दिया । लाख हाथ पांव पटक कर भी आभिजात्य वर्ग उन शिकमी काश्तकारों को उत्तर प्रदेश में बेदखल नहीं कर सका । यह उनके सोच और लक्ष्य की क्रांतिकारी उपलब्धि है, जिसका भारत में ही नहीं, संसार में कम शानी है । देश के सर्वाधिक पीड़ित हरिजन समाज के लिए चौधरी चरण सिंह इस तरह वरदान बन गये ।

सीरदारी के विषय में ही नहीं, सारे जमींदारी उन्मूलन विधेयक और उसे प्रभावी करने को चकबन्दी कानून, हदबन्दी तथा भूमि संरक्षण सुधारों में चौधरी चरण सिंह के किसान का कर्मठ बेटा होने का व्यक्तित्व बिखरा पड़ा है । उनकी जुझारू प्रकृति को इन क्रांतिकारी प्रयोगों के लिए अपने शासक दल के आभिजात्य वर्ग का, साथ ही तथाकथित समाजवादी कहे जाने वाले वर्गों का, कितना विरोध सहना पड़ा, उनसे कितना मोर्चा लेना पड़ा, यह स्वयं में एक शोध का विषय बन जायेगा । उसका आनुपातिक विवरण संबंधित प्रकरणों में दिया गया है। यहां केवल हम अमेरिकन कृषि विशेषज्ञ डब्लू० ए० लैडजिन्सकी की, जिन्होंने दुनिया के कितने उन्नत देशों में कृषि सलाहकार के रूप में काम किया है, योजना आयोग को भेजी गई एक रिपोर्ट का उल्लेख करना जरूरी समझते हैं । 'भूमि व्यवस्था का कृषि उत्पादन पर प्रभाव' विषय पर रिपोर्ट देते हुए उन्होंने लिखा कि "वास्तव में, केवल उत्तर प्रदेश में एक बहुत सोचा-समझा व व्यापक कानून पास किया गया है और उसे असरदार ढंग से लागू किया गया है । वहां दसियों लाख काश्तकारों को मिलकियत दी गयी और उन लाखों काश्तकारों को जो

बेदखल कर दिए गये थे, उनके अधिकार वापस दिये गये।" उन्होंने दूसरी जगह यह भी लिखा है कि "भारत में सिर्फ उत्तर प्रदेश में ऐसे कानून बने, जिन पर साथ-साथ अमल हुआ और महत्त्वपूर्ण कामयाबियां मिलीं।" यह चौधरी चरण सिंह के गम्भीर चिन्तन, अथाह देशभक्ति और दृढ़ तथा अजेय इच्छा का ज्वलंत उदाहरण है। उद्योगों या उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रीकरण करना भी उसी चिन्तन का परिणाम है, जिससे न पूंजी न ही उत्पादन के साधन लोगों के हाथ में केन्द्रित हो जाते हैं। इससे असमानता पर भारी अंकुश लगते हैं। चीन में माओत्से-तुंग ने अन्ततः रूसी पद्धति को त्याग कर कृषि को ही प्राथमिकता नहीं दी, अपितु बड़ी-बड़ी मशीनीकृत योजनाओं और उद्योगों की अपेक्षा मानव श्रम और विकेन्द्रित श्रम-प्रधान उद्योगों पर अधिक भरोसा किया। धरतीपुत्र चौधरी चरण सिंह की गांधीवादी 'बहुजन हिताय' विचार-धारा का यही स्वरूप है, जिससे जन-जन की आर्थिक समृद्धि, समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता व्यक्ति और समष्टि को गौरवपूर्ण बना सकती है।

एक बात और। रूसी आयोजना में बड़े-बड़े राजकीय या सहकारी कृषि फार्मों पर बहुत जोर दिया गया है। उसकी नकल कर सन् 1957 की नागपुर कांग्रेस में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भारत में भी सहकारी खेती का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। तब जवाहरलाल जी देश पर छाये हुए थे और उनके विरोध में बोलने का किसी साधारण राजनैतिक पदाधिकारी, को चाहे वह ऊंचा से ऊंचा क्यों न हो, साहस ही नहीं पड़ता था। उस प्रस्ताव का विरोध किया असाधारण प्रतिभा सम्पन्न चौधरी चरण सिंह ने। लोग उनके अदम्य साहस पर चकित हो मुग्ध हो गये। उनके तर्क इतने सटीक और ग्राह्य थे कि नेहरू की उपस्थिति में ही तालियों की गड़गड़ाहट से कांग्रेस का विशाल पंडाल कई बार गूंज उठा। नेहरू का प्रस्ताव फेल होता ही नहीं। वह भारी बहुमत से पारित हुआ। लेकिन सहकारी खेती का प्रस्ताव उसी दिन वहीं दफन हो गया। उसे कभी लागू करने की कोशिश भी नहीं हुई। यह है एक झलक चौधरी चरण सिंह के चिन्तक रूप, तर्क शैली और उनके अदम्य साहस तथा अनुभव की। अनुभव यह कि किसान को धरती प्राणों सी प्यारी होती है। वह अपनत्व के मोह में उसकी मिट्टी तैयार करता है, उसमें खाद डालता है और अपने कठोर श्रम से उससे अधिक से अधिक पैदा करता है। धरती उसकी माता है। सहकारिता में भूमि का स्वामित्व खो कर जब रूस और चीन ने असफलता का मुंह देखा, तब भारत की क्या बिसात?

सेवा सहकारी संस्थाओं को चौधरी चरण सिंह ने छोटे-छोटे व्यक्तिगत कृषि फार्मों तथा कुटीर उद्योगों और लघु उद्योगों के समुचित विकास और उनके द्वारा उत्पादन के लिए आवश्यक माना है। यह इस सूखे देश की पुरानी परम्परा भी है, जहां तालाब, कुंए, जलाशय सहकारिता से सबके उपयोग के लिए बनाये जाते थे।

चौधरी चरण सिंह के आर्थिक चिन्तन पर ही जनता पार्टी की आर्थिक नीति

बनी जो उनकी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति' (गांधीवादी रूपरेखा) में संक्षिप्त, किंतु संश्लिष्ट रूप में प्राप्य है। उसमें पूंजीपतियों की ही तरह राज्य के हाथ में भी संपत्ति के केन्द्रीयकरण का विरोध किया गया है, क्योंकि उससे स्वतंत्रता पर बन्धन लग जाते हैं और अनुचित असमानताएं भी आ जाती हैं जिससे सामाजिक और आर्थिक तनाव पैदा होते हैं। जरूरी भारी उद्योगों के बारे में भी चौधरी साहब के निर्देशन में जनता पार्टी ने गांधी जी की न्यासी (ट्रस्टीशिप) योजना को स्वीकार किया, जिसके अन्तर्गत यह प्रतिपादन है कि उद्योगपतियों को अपने धारणों का संचालन उनके पास रखने दिया जायेगा और उनकी योग्यताओं को सम्पत्ति की वृद्धि के लिए इस्तेमाल करने दिया जायेगा, लेकिन अपने लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र के लिए और इसीलिए बिना (दूसरों का) शोषण किये। राज्य उनकी सेवा के अनुरूप उनका कमीशन तय करेगा। इससे प्रबन्धकों के लिए प्रेरणा स्रोत भी खुला रहेगा और श्रमिकों, उपभोक्ताओं, कच्चा माल पैदा करने वालों के साथ ही सारे समाज के हित भी सुरक्षित रहेंगे। चौधरी चरण सिंह का यह यथार्थ गांधीवादी दर्शन संत विनोबा के बाद सबसे बड़ा गांधीवादी चिन्तन है। यह सर्वोदय क्षेत्र के दादा धर्माधिकारी से कहीं ठोस धरातल का है।

दरिद्रनारायण की भावधारा में अभिभूति होने से ही चौधरी चरण सिंह को वह प्रशासनिक दक्षता भी प्राप्त हुई जो अपने अनुशासन, दूरदर्शिता और कर्त्तव्य-परायणता के लिए अत्यन्त ही विशिष्ट मानी गयी है। मन्त्री के रूप में उत्तर प्रदेश और भारत सरकार में उन्होंने जो कुछ भी छुआ उसे सोना कर दिया। यद्यपि उनकी मूलगत प्रवृत्तियां कृषि और आर्थिक विकास से युक्त थीं, तथापि दिनोंदिन बढ़ रही सामाजिक कुरीतियों और अराजकता को मिटाने के लिए कानून की प्रतिष्ठा के काम में वे भावनात्मक वेग से उल्लसित हो जाते हैं। कानून का पालन सभ्यता का माप दंड है। शासन के दण्ड का नियंत्रण भी कानून पालन के लिए आवश्यक है। इस दिशा में उत्तर प्रदेश तथा केन्द्र के गृह मन्त्री के रूप में उन्होंने अविस्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके एक सहृदय आलोचक ने लिखा है कि मूल रूप से सरल और संकोची प्रकृति के होने के कारण वे शान्ति व्यवस्था जैसे विभागों में बहुत तेज तर्रार हो जाते हैं। यह अनुदार विश्लेषण है। वे अन्याय, अत्याचार, निरंकुशता, भ्रष्टाचार आदि असामाजिक व्यवहारों के कट्टर विरोधी हैं। इनकी गंध पाकर उनका खून खौल उठता है। वे जन-जन की समानता, स्वतंत्रता और सम-मर्यादा के कायल हैं। वे जाट कुल के गौरव हैं। यद्यपि जाति प्रथा में उन्हें विश्वास नहीं। जाटों का जातीय गुण है कि वह किसी दूसरे का चाहे वह कितना भी शक्ति-सम्पन्न क्यों न हो, दाब कदापि नहीं सह सकता। ऊंच-नीच के अपने अमर्यादित समाज में अपराध स्थिति आजादी के सैंतीस वर्षों बाद भी उतनी ही भयंकर है, जितनी गरीबी। इसलिए उनका पौरुष अपराध निवारण के कामों में प्रस्फुटित हो उठता है। वे नैतिकता के साथ-साथ अनुशासन पसन्द करते हैं।

यह भय से कम और व्यक्ति के निजी विकास से अधिक सम्भव होता है। इसी अनुप्रेरणा से उन्होंने अपने बच्चों के लिए 'शिष्टाचार' नामक पुस्तक लिखी। सार्वजनिक जीवन में भी वे अमर्यादित व्यवहार नहीं सह पाते हैं।

चौधरी चरण सिंह ने गृहमन्त्री के रूप में ऐसे काम किए, जो लौह पुरुष सरदार पटेल का अनायास ही स्मरण कराते हैं। जनता सरकार में केन्द्रीय गृहमन्त्री के रूप में आपातकाल की ज्यादतियों और अत्याचारों के खिलाफ उनके द्वारा स्थापित जांच आयोग उनकी दूरदर्शिता के परिचायक हैं। सभ्य समाज में कानून की नजर में बड़े से बड़े और छोटे सब बराबर होते हैं। ऐसा उन्होंने कर दिखाया। जनता सरकार अपनी पूरी अवधि के पहले न टूटती, तो आपातकाल के अत्याचारों के उत्तरदायी उसी तरह यातनाएं भुगतते, जैसी उन्होंने निरपराध लोगों को जेलों में सड़ा कर दी थी। आपातकाल की मानसिकता भी भारत से हमेशा के लिए भाग गयी होती। यह जहांगीरी न्याय होता जो जनता सरकार के टूट जाने से सम्भव नहीं हुआ। देश आज भी एकतंत्र और वंशतंत्र का शिकार है। लेकिन आपातकाल के बाद अगर चौधरी चरण सिंह जैसा दूरदर्शी और कर्त्तव्य-परायण गृहमन्त्री न मिला होता, तो न जानें देश की आज क्या दशा होती? जो हो रहा है, वह क्या कम हृदय विदारक है?

केन्द्रीय गृहमन्त्री के रूप में उनके द्वारा स्थापित परिगणित जाति आयोग, पिछड़ी जाति आयोग, अल्पसंख्यक आयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि देश को एकसूत्र में पिरोने तथा राष्ट्रीय एकता के लिए उनका दृष्टिकोण अत्यन्त दूरदर्शी है। आज संकीर्ण मनोवृत्ति के कर्णधारों द्वारा सारे देश में जो जातिगत, भाषागत, धर्मगत द्वेष और तनाव जानबूझ कर फैलाया जा रहा है, वह सब कभी का मिट गया होता। मौजूदा कर्णधारों को अपना वोट बैंक बनाए रखने के लिए इन तनावों को बरकरार रखना जरूरी है। ऐसा औरंगजेब की कट्टर नीति की तरह कितना घातक है, वे समझ नहीं पाते। मजबूत राष्ट्रीय एकता के लिए एक भाषा, एक भूषा और आर्थिक समानता उतनी ही जरूरी है, जितनी धर्म निरपेक्षता। आज के सत्ता के कर्णधारों के लिए धर्मनिरपेक्षता उतनी जरूरी नहीं, जितना अल्पमत और बहुमत का तनाव। धर्म-निरपेक्षता घर के अन्दर पूजा पद्धति की शासन द्वारा सुरक्षा है। घर से बाहर सब देश के सामाजिक और राजनैतिक श्रेणियों के सदस्य हैं, शुद्ध हिन्दुस्तानी हैं। इस तरह सच्ची धर्मनिरपेक्षता में धर्म और पूजा स्थल के बाहर न कोई अल्पमत है, न बहुमत। लेकिन स्वार्थी कर्णधार दो राष्ट्र के सिद्धान्त का नया रूप मिश्रित संस्कृति और दो राजभाषाओं को देश पर थोप कर उसकी एकता की जड़ खोद रहे हैं और अकारण साम्प्रदायिकता को बनाये रखना चाहते हैं।

चौधरी चरण सिंह अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही भ्रष्टाचार के कट्टर विरोधी रहे हैं। पूंजीवादी परम्परा में मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार समूल मिटाया

नहीं जा सकता है—यह वे समझते हैं, लेकिन उसे नियंत्रित कर कम जरूर किया जा सकता है। आजादी के बाद हर श्रेणी के हिन्दुस्तानी नागरिक देश का उत्कर्ष देखना चाहते थे। वे भ्रष्टाचार में कदापि लिप्त नहीं होते, अगर सत्ताधारी कांग्रेसी जन-प्रतिनिधि और उनके कर्णधार शुरू से ही इस ओर समुचित ध्यान देते। वे क्यों भ्रष्ट हुए, देश कैसे नैतिकता से दूर हट गया, यह एक विस्तृत शोध का विषय है। यह किन्तु सच है कि स्वतंत्रता के आते ही स्वतंत्रता के संघर्ष में अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले सेनानी अपने कोठे भरने में जी-जान से जुट गये। सैकड़ों की संख्या में हर राज्य में ऐसे भी लोग स्वतंत्रता सेनानी बन गये, जिन्होंने आजादी के संघर्ष में भाग ही नहीं लिया था। कांग्रेसी सरकारों ने भी पेंशन, अनुदान आदि देकर इस प्रवृत्ति को बढ़ने दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में विदेशी शासकों की मदद करने वाली व्यापारिक संस्थाओं और व्यापारियों में चांदी की घुड़दौड़ मची ही थी। नयी सरकार उनके जाल में आसानी से फंस गयी, क्योंकि बढ़ती कीमतों और अनैतिकता के कारण चुनाव बहुत खर्चीले पड़ने लगे। इस तरह चंदा दलगत राजनीति का एक आवश्यक अंग बन गया। सत्ताधारी पार्टी को चंदे की कमी कहां होती? बस क्या था? पूंजीवालों और सत्ता-धारियों का चोली-दामन एक बनने लगा। यह मौजूदा भ्रष्टाचार की शुरुआत है, जो देश भर में सर्वव्यापी बन गया है। कोई इससे नहीं छूटा है। छोटे सरकारी कर्मचारी गांधी जी की तसवीर दिखा कर फतवा देते हैं "देखो गांधी जी के हाथ को, एक दो नहीं, पांच गिनो।" नेहरू की अयथार्थ आर्थिक नीतियों के कारण महंगाई भी अजगर सांप की तरह मुंह फाड़कर बढ़ी। भ्रष्टाचार आज जीवन का तरीका बन गया है।

चौधरी चरण सिंह ने अपने जीवन में "सादा रहना और ऊंचा विचार" को कड़ाई से अपनाया। भारत की प्राचीन परम्परा में अर्थ की गुलामी निकृष्टतम मानी जाती थी। महामन्त्री चाणक्य का यह उद्घोष था कि देश का प्रधान सभासद झोंप-ड़ियों का रहने वाला हो, सेवा में समर्पित व्यक्तित्व हो और ऐसा हो कि अगर सुबह का भोजन उसके घर में हो तो शाम का जुगाड़ करना पड़े। चौधरी चरण सिंह का निजी जीवन प्रायः इसी आधार पर निरूपित रहा है। सार्वजनिक जीवन में भी पूंजी-पतियों से उन्होंने सतर्कतापूर्वक लम्बी दूरी बनाये रखी है। गरीब किसानों और मज-दूरों से एक-एक, दो-दो रुपये चन्दे के अलावा उन्होंने किसी पूंजीपति को चंदा देने के लिए भी अपने पास नहीं फटकने दिया। इस विषय में वे महात्मा से भी अधिक कट्टर रहे हैं। सरकारी कर्मचारियों का भ्रष्टाचार वे अक्षम्य मानते हैं, क्योंकि सरकारी कर्मचारी का देशभक्ति के एवज में जीवन-यापन के लिए वेतन सुरक्षित है। उनका वेतनमान भी इस गरीब देश में साधारण नागरिकों की तुलना में कम नहीं। अतः उनके लिए सेवा के काम में बेईमानी और भ्रष्टाचार अपनाना भारी पाप है। चौधरी

साहब ने सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ युद्ध स्तर पर भ्रष्टाचार विरोधी अभियान चलाया। लेकिन न्याय की तराजू में अपनी अटूट आस्था के कारण उन्होंने किसी एक को भी अकारण नहीं सताया। आपातकाल में केवल आतंक जमाने के लिए योग्य तथा निष्पक्ष कर्मचारियों को शासकों ने तबाह किया। उसका न कोई प्रभाव पड़ सकता था, न पड़ा। चौधरी चरण सिंह के अभियान से मगर सारे देश में खलबली मच गयी। राज कर्मचारी ही नहीं, उनके भ्रष्टाचार के पोषक उच्च पदस्थ राजनीतिज्ञ भी तेज हवा में पीपल के पत्ते की तरह थरथर कांपने लगे। यह समूचे देश के लिए नयी दिशा का चौधरी साहब द्वारा निर्देश था।

चौधरी चरण सिंह गुजरात प्रदेश को अपना गुरुपीठ मानते हैं। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द वहीं के थे। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा था कि "अपना बुरा शासन भी अच्छा है, पराया अच्छे से अच्छा शासन भी बुरा है।" महर्षि ने अस्पृश्यता निवारण, मद्यनिषेध, दहेज-उन्मूलन, बाल-विवाह-निषेध, विधवा-विवाह आदि कितने समाज सुधारों के महत् कार्यों के साथ-साथ एक भाषा, एक भूषा और एक भोजन का आन्दोलन चलाकर देश की अखंड भारतीयता की नींव को मजबूत बनाने का श्रीगणेश किया था। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी पर उनका प्रभाव प्रत्यक्ष पड़ा। चौधरी चरण सिंह का सार्वजनिक कार्यकलाप सक्रिय रूप में आर्य समाज से ही प्रारम्भ हुआ था। वही से अनुप्रेरित वह महात्मा गांधी के स्वतंत्रता संघर्ष में कूदे। महात्मा जी भी गुजराती थे। गुजरात के ही बारदोली के किसानों के महासेनानी सरदार पटेल थे। महर्षि दयानन्द से प्रेरणा, महात्मा गांधी से विचार और सरदार पटेल से कर्मयोग लेकर चौधरी चरण सिंह का व्यक्तित्व अनायास ही खिल उठा। उनकी आध्यात्मिक आस्था इसीलिए उतनी ही प्रबल है जितनी राजनैतिक चेतना और ठोस यथार्थ की कर्मठता। स्वामी विवेकानन्द ने भी उन्हें कम अनुप्रेरित नहीं किया। स्वामी विवेकानन्द के कर्मयोग में स्वदेश की स्वतंत्रता का आह्वान कम नहीं। इस तरह उनके राजनीति-प्रधान व्यक्तित्व में ज्ञान, भक्ति और कर्म मार्गों का अद्भुत सामंजस्य है। शायद इसीलिए आजकल की कुटिल राजनीति से वे अक्सर ऊब जाते हैं। किसानों, मजदूरों, हरिजनों और दूसरे शोषित और पिछड़े लोगों के अभ्युत्थान के लिए वे कीचड़ में कमल जैसे हैं। वे मूल रूप से गम्भीर गांधीवादी चिन्तक के साथ-साथ अध्यात्मवादी हैं। भारत की राजनीति में आज जो झूठ, फरेब, और स्वांग चल पड़ा है, उसे वे नितान्त निन्दनीय मानते हैं। साध्य और साधन की पवित्रता के विश्वास की तरह वे बाहर-भीतर एक हैं, और गांवों की अस्सी प्रतिशत जनता जनार्दन तथा शहरी पिछड़े वर्गों के लिए पूर्णतया समर्पित हैं। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' भारतीय अध्यात्म का मूल है।

ज्ञान, भक्ति और कर्म के सम्मिश्रण से उत्पन्न उनके स्वभाव के विरोधाभास

को भी समझना आसान नहीं । माता जी गायत्री देवी ने एक भेंट में बताया कि कई बार वे गुस्सा भी करते हैं, लेकिन शान्त होते ही उस पर सच्चा पश्चाताप भी करते हैं। परिवार वालों ही की तरह अपने निकट के मिलने वालों से भी वे अगाध स्नेह रखते हैं। अपनी सरलता में वह सबका विश्वास कर लेते हैं। उन्होंने श्रीमती इन्दिरा गांधी पर विश्वास कर लिया था । और जब विश्वास करने वाला धोखा दे जाता है, तब भी उससे कीना नहीं मानते । धोखा देने से धोखा खाना, वे बेहतर समझते हैं । उनकी सबसे छोटी अमेरिका प्रवासिनी पुत्री ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि कई बार उनके पास ऐसा लगता है कि वे उतने महान नहीं जितना कल्पना से निकट के लोगों ने उन्हें बना दिया है और कई बार उनके पास बैठ कर यह आभास होता है कि वे सब एक मन्दिर में बैठे हैं । वास्तव में चौधरी साहब का व्यक्तित्व मन्दिर से कम नहीं, जहां अच्छे-बुरे, धर्मात्मा, पापी सब विश्वासपूर्वक उनका संवेदन पा जाते हैं ।

सार्वजनिक लोगों में उनकी जितनी प्रशंसा है, उतनी ही कटु आलोचना भी है, यद्यपि अब यह सर्वविदित है कि उनका विरोध ईर्ष्यावश है । उनकी सच्चाई, सेवा की लगन, उनके सोच और चिन्तन तथा उनकी कर्मठता से चिढ़ कर बड़े से बड़े ने उनके खिलाफ क्या-क्या प्रचार नहीं किया । महानता हमेशा ईर्ष्या की कारक रही है । उनकी स्पष्टवादिता और साफ सूझ-बूझ तथा अद्भुत दूरदर्शिता से ऊँचे से ऊँचे वृत्त के राजनीतिज्ञ उनसे सहज ही चिढ़ जाते हैं । इस जीवनवृत्त में इसके कितने उदाहरण उल्लिखित हैं । सबसे ओछी बात जो सत्ताधारियों ने उनके बारे में प्रचारित की है, वह यह है कि वे जातिवादी हैं । इस जीवनी के परिच्छेदों में आया है कि जब वे शिक्षा समाप्त कर किसी समुचित जीवन-यापन के प्रकार को ढूंढ़ रहे थे, तब उन्होंने बड़ौत के जाट स्कूल की द्वितीय प्रधानाध्यापकी और लखावटी के स्नातकोत्तर डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल के पद को इसलिए स्वीकार नहीं किया कि उन दिनों ये दोनों शिक्षा संस्थान 'जाट' शब्द से जुड़े थे । जाट क्षत्रिय हैं। चौधरी साहब के अनुयायी पिछड़े वर्गों की जातियां हैं । फिर भी निकृष्ट लोग जो गले तक जातिवाद में डूबे हैं, उनके खिलाफ जातिवादी होने का झूठा प्रचार करते हैं । पाठक यह जीवनी समाप्त कर स्वयं अनुभव करेंगे कि चौधरी चरण सिंह जाति-पांति, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर की भावना से ऊपर शुद्ध वेद-विहित श्रेष्ठ आर्य हैं । जाति-पांति ने ही इस देश का नाश किया । उसको मिटाने के लिए चौधरी चरण सिंह ने कानूनी कदम उठाये, जो इस जीवन-वृत्त में अंकित हैं । उनका यह देश भर में अग्रणी काम रहा है ।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उनको मुख्य मंत्री पद के लालच में कांग्रेस को छोड़ने की बात प्रधान मंत्री के रूप में कई बार उठायी है । यह इतना झूठा प्रचार है कि उस पर कोई भी टिप्पणी अपमानजनक होगी । उसी थोथे प्रचार के वश दूसरे सत्ताधारी भी गला फाड़-फाड़ कर यह कहते हैं कि चौधरी चरण सिंह घोर महत्त्वाकांक्षी हैं ।

चौधरी साहब के सभी कटु आलोचक और आजकल के उनके सहयोगी श्री लालकृष्ण आडवाणी ने प्रकारान्तर से अपनी पुस्तक में उनके बारे में यह व्यक्त करने की कोशिश की है कि महत्त्वाकांक्षा हीन भावना से उत्पन्न होती है और सारे पापों की जड़ है। हीन का उनका अर्थ अभाव हो तो उसके आपूर्ति की लालसा समझी जा सकती है। हीन भावना अगर निराशा पैदा करने वाली है, जैसी वह साधारणतया होती है, तो वह तीव्र असंतोष और अपकर्ष-कारक ही हो सकती है। महत्त्वाकांक्षा का आधार उद्दान्त विश्वास और लक्ष्य शुभ होता है। चौधरी साहब ने कभी यह छिपाया नहीं कि वे महत्त्वाकांक्षी हैं। महत्त्वाकांक्षा के बिना अध्यवसाय का आधार कहां मिलेगा? उनका यह भी विश्वास रहा है कि राजतंत्र के माध्यम से वह इस देश को शीघ्राति-शीघ्र महान बना सकते हैं। यह उनकी देश के प्रति एकान्त समर्पण की भावना है। इन भावनाओं को ईर्ष्यालु लोगों ने दर्प कहा है। यह दर्प नहीं, प्रत्युत उस अगाध विश्वास की लगन है, जिसके अन्तर्गत भारतीय राष्ट्र के अस्सी प्रतिशत निवासियों को चौधरी चरण सिह ने नयी आशा का सम्बल दिया है, नयी जागरूकता दी है। विश्वास लक्ष्य के पथ का आलोक है। दर्प उसके विपरीत झूठे नारों से जनता की आंखों में धूल झोंकने की कोशिश है। चौधरी चरण सिंह जैसा अपरिग्रह व्रती तपस्वी किसी को भी धोखा दे ही नहीं सकता। वह कर्म करता है फलाफल की चिन्ता से ऊपर उठ कर, वेद-विहित श्रेष्ठ आर्यों की ललक से।

उनकी मानवीयता का जिक्र न करना उनके व्यक्तित्व के एक महान आधार-भूत पहलू को अनदेखा करना होगा। उनके दादा का नाम बादाम सिंह था। वही राजा नाहर सिंह को फांसी हो जाने के बाद सदल-बल वल्लभगढ़ से भटौना आये थे। वहीं से परिवार की सैनिक परम्परा में किसानी शुरू होती है। वैसे जाट कमर में तलवार बांध कर हमेशा से खेतों में हल चलाते आये हैं। बादाम सिंह जी के शील, स्वभाव, गुणों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं है। उनके यशस्वी पुत्र और चौधरी साहब के पिता मुखिया मीर सिंह की कर्मठता, न्याय-परायणता और पर दुःख-कातरता मेरठ के क्षेत्र में अब भी मशहूर है। चौधरी चरण सिंह में पिता से प्राप्त वंशगत गुण और माता से प्राप्त स्वच्छता और तरतीब सम्पूर्ण रूप में विद्यमान है। वे धनी नहीं, लेकिन अभावों में लोगों की, विशेष कर राजनैतिक पीड़ितों की यथाशक्ति मदद करते हैं। कितने क्रान्तिकारी, आपातकाल के सताये परिवारों के लोग, विद्यार्थी प्रतिदिन उनसे मदद मांगने आते हैं। वे भरसक किसी को निराश नहीं करते। जहां वे भरपूर मदद नहीं कर पाते, वहां अपनी विवशता पर चुप हो जाते हैं। संक्षेप में उनकी विनोदप्रियता, सरलता, कोमलता तथा प्रत्येक जीवधारी के प्रति संवेदनशीलता को देख कर किसी को यह सन्देह भी नहीं रहेगा कि उनकी कठोरता के आभरण में एक महान स्नेहशीलता व्याप्त है। उनके ये गुण उनके पितामह के नाम को चरितार्थ

करते हैं। वे ठीक बादाम हैं—बाहर से कठोर और भीतर से कोमल। भारतीय जनता पार्टी के श्री राम जेठमलानी उनका यह रूप समझ नहीं पाये, जब उन्होंने कहा कि वे बच्चों की तरह सरल हैं और कभी-कभी छोटी सी बात से उनकी आंखें भर आती हैं। यह अनुपमेय महानता है। चौधरी चरण सिंह बच्चों को प्यार करते हैं। रात्रि अवकाश का अपना समय वे बच्चों में बिताते हैं। यही उनका मनोरंजन है। वे ताश का साधारण खेल खेलते हैं, शतरंज नहीं।

मैंने इस जीवन-वृत्त की कथा को कहने में उन्हें बहुत निकट से देखा। उत्तर प्रदेश की प्रशासनिक सेवा में उनके मन्त्रिमंडल-काल में मैंने राजकीय सेवा भी की है। उस रूप में भी उनको देखने, समझने, उनका आक्रोश सहने का मुझे अवसर मिला है। मैं यह विश्वास से कह सकता हूं कि उस किसान जैसा दिखने वाले महामानव की समता का स्वातंत्र्योत्तर भारत में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के बाद कोई दूसरा नहीं। उस तपस्वी के पचपन वर्ष के सार्वजनिक जीवन में किसी बात पर कोई उंगली न उठी, न ही उठ सकेगी। विरोधियों की ईर्ष्या भी जल-भुन कर राख हो जायेगी और बेदाग मसीहा भारत के शोषित संतप्त लोगों के विचार-बोध में उनकी क्रान्ति की जागरूकता बन कर लहराता रहेगा।

चौधरी चरण सिंह बापू से कभी मिले नहीं। उनका दर्शन करते रहे, उनका साहित्य पढ़ते रहे और उस पर मनन करते रहे। फिर भी सूत्रों के रचयिता बापू से उन सूत्रों का भाष्यकार कहीं अधिक बोधगम्य साबित हुआ। इस तरह वेद और उपनिषद् दोनों समान महत्त्व के बन गये। किसान का बेटा हर हालत में किसान ही रहा। जब वह प्रधानमंत्री बना, उसके कारण देश भर के किसानों को यह लगा कि उनका अपना कोई सगा-संबंधी भारत के सिंहासन पर बैठा है। जो उन्हीं की तरह रहता है, उन्हीं की तरह खाता-पीता है। उन्हीं की बात रातदिन सोचता है। उसमें कहीं कोई बनावट नहीं, नफासत के नाम पर हाथ में केवल नाइजेरियन बेंत की एक सुन्दर छड़ी है, जिसको देखने भर से ही आततायी भय से कांप जाते हैं।

वह मेरठ की धरती की उपज है। वह धरती महाभारत युद्ध से 1857 की राज्य क्रान्ति क्या सन् 42 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तक देशभक्तों के खून से सींची जाती रही है। उसी की पवित्र माटी से बना है चौधरी चरण सिंह का पंचभूत, जिसमें किसानों, मजदूरों के सर्वोदय की अनंत लालसा दहकती है। हमारे पश्चिमी हावभाव के नक्काल कर्णधारों ने नगरों की दिखावटी शान शौकत के लिए गांवों की उपेक्षा की, यह देश के बहुमत का घोर अपमान है। उस अपमान के प्रतिकार की ज्वाला में उभरा है चौधरी चरण सिंह, जो सागर सा गहरा है और हिमालय सा ऊँचा है। उसे भारत के लक्ष-लक्ष किसान-मजदूरों तथा शोषितों का पुनीत लक्ष्य प्राप्त करना है। वह उसे बिना प्राप्त किये जायेगा नहीं।

हर महामानव की तरह चौधरी चरण सिंह "अकेला" हैं। अपने सिद्धान्तों और आदर्शों के पथ पर बिना दाये-बायें देखे वे निरन्तर आगे बढ़ते रहे हैं। संन्यास का प्रथम चरण पूरा होने वाला है। उनका चलना पूर्व गति से जारी है। हिन्दुओं ने औसत आयु सौ वर्ष मानी है। उसे वह पूरा करेंगे, यह जन-जन की आकांक्षा है, क्योंकि उसी से भारत का स्वर्णिम भविष्य निखरेगा।

मड़ैयों में प्रकाश

चौधरी चरण सिंह का जन्म 23 दिसम्बर सन् 1902 ई० को मेरठ की हापुड़ तहसील के नूरपुर गांव की मड़ैयों के बीच एक छप्पर के घर में हुआ। सूरज की किरणें फूट रहीं थीं, दिशाओं के अंधेरों में प्रकाश भरता जा रहा था जब माता ने उन्हें जन्म दिया। मड़ैयों के जाट परिवार में खुशी के ढोल बज उठे, थालियां झनझना उठीं, कुनबे का कुनबा प्रातःकालीन पक्षियों की तरह खुशी का समवेत कलरव कर उठा। बालक का जन्म मड़ैयों के सौभाग्य का सूचक था।

उन मड़ैयों के निर्माण के पीछे दारुण दुःख और दुर्दिन के साथ-साथ एक गौरव-पूर्ण इतिहास की स्मृति जुड़ी थी। मुगल सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में उसकी कट्टर धर्मान्धता से हिन्दू ही नहीं, बहुत से सद्यःदीक्षित मुसलमान भी बहुत पीड़ित और सशंकित रहे। औरंगजेब इतना असहिष्णु और अदूरदर्शी था कि सन् 1666 में उसने मथुरा के अपने फौजदार अब्दुल नबी खां द्वारा श्री कृष्ण जन्म-स्थान के मंदिर की जगह पर मस्जिद बनवा दी। हिन्दू बहुत क्षुब्ध हुए। धार्मिक मदान्धता में उसे किसी की परवाह नहीं थी। उसने सुप्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियों को तोड़ा। धर्म के नाम पर हिन्दुओं पर जज़िया आदि करों को लगाया तथा अनेक प्रकार से उनको उत्पीड़ित कर उनके धर्म-परिवर्तन की निरन्तर कोशिश की। आगरा-मथुरा क्षेत्र के जाट किसान औरंगजेब के खिलाफ़ सिख गुरुओं की तरह उठ खड़े हुए। आगरा के पास तिलपत का ऐसा ही एक जाट सरदार गोकुल राम या गोकुला था। वह सिनसिनी गांव का मूल निवासी था। उसने जाट, गूजर और अहीर किसानों को संगठित कर मुगल खजाने में माल-गुज़ारी न जमा करने का आन्दोलन छेड़ा। इससे मुगलों का क्रोध करना स्वाभाविक था। उन्होंने उस अदना सरदार को कुचल डालना चाहा। यह आसान नहीं साबित हुआ। उल्टे गोकुला का प्रभाव बढ़ता गया। नवम्बर 1669 में गोकुला को सर करने के लिए स्वयं औरंगजेब सेना समेत दिल्ली से मथुरा आया। गोकुला ने भी जाट, अहीर व गूजरों को इकट्ठा कर तिलपत पर कड़ा मुकाबला किया। शाही फौजों के पास तोपें और राकेट थे। गोकुला परास्त हो गया। उसे बन्दी बना कर आगरा जेल भेजा गया। आगरा में उसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा गया। इस प्रस्ताव को गोकुला ने दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया। तब आगरा की कोतवाली के सामने उसको तथा उसके प्रमुख सहायकों को कत्ल कर बोटी-बोटी करा दिया गया। परन्तु शहीद होकर गोकुला मुगलों के लिए अधिक खतरनाक साबित हुआ। सिनसिनी के जाटों ने नया सरदार चुना,

जिनमें राजाराम बड़ा प्रतापी निकला उसने सौगढ़िया के जाटों के सहयोग से आगरा क्षेत्र में मुगलों के नाक में दम कर दिया। उसने आगरा पर आक्रमण कर सिकन्दरा में अकबर की कब्र को उधेड़ा। उसका यह कृत्य क्षम्य नहीं माना जा सकता। लेकिन तब के देशकाल में उसका उद्देश्य गोकुला की पाशविक हत्या का बदला चुकाना था, अकबर की कब्र का अपमान करना नहीं। राजाराम भी लड़ते-लड़ते मारा गया। उसकी परम्परा में चूड़ामणि सरदार बना जो मुगल शासन के लिए भय और आतंक का उतना ही भारी कारण बना, जितना महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज।

सन् 1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में राज-सिंहासन के लिए परम्परागत युद्ध छिड़ा। अन्त में शाह आलम बहादुर शाह गद्दी पर बैठा। उसने चूड़ामणि की शक्ति और सत्ता को स्वीकार कर उसे दिल्ली से चम्बल तक के प्रदेश का "शाह-ए-राह" नियुक्त किया। "शाह-ए-राह" आम रास्तों और चम्बल के पार जाने के लिए कर लेने का अधिकारी था। इससे चूड़ामणि की शक्ति बढ़ी। शीघ्र वह एक स्वतन्त्र राजा की तरह मुगल दरबार से व्यवहार करने लगा। चूड़ामणि के भाई का लड़का बदन सिंह था, जिसका चूड़ामणि से गहरा मतभेद हुआ और इतना बढ़ा कि जयपुर के जयसिंह ने जब चूड़ामणि के एक मजबूत किले, थून, पर आक्रमण किया, तब बदन सिंह जयसिंह की ओर से चूड़ामणि के विरुद्ध लड़ा। जयसिंह विजयी हुआ।

चूड़ामणि को इसका घोर दुःख हुआ। उसने आत्महत्या कर ली। सिनसिनी और सौगढ़िया जाटों ने चूड़ामणि की जगह बदन सिंह को सरदार चुना। बदन सिंह के जीवनकाल में ही उसके लड़के सुरजमल ने भरतपुर में स्वतन्त्र जाट राज्य स्थापित किया तथा पिता के मरने के बाद महाराजा की पदवी ग्रहण की। उसकी विलक्षण बुद्धि, दूरदर्शिता और पराक्रम के कारण भरतपुर हिन्दुस्तान का अजेय कीर्ति स्तम्भ बना। दिल्ली के विजेता फिरंगी जनरल लेक (Lake) को भरतपुर में मुंह की खानी पड़ी। अंग्रेज इतिहासकारों ने उस पराजय का उल्लेख प्रकारान्तर से ही किया है। महाराज सूरजमल ने भरतपुर के जाट राज्य का विस्तार उत्तर में मेरठ-मुजफ्फरनगर, पश्चिम में रिवाड़ी तथा मेवात, और पूरब में मैनपुरी-इटावा तक किया। पानीपत की तीसरी लड़ाई का नतीजा और हिन्दुस्तान का इतिहास दूसरा हुआ होता अगर मराठे उसकी सही सलाह को मान गये होते। उसकी श्रेष्ठ रणनीति और कुशाग्र राजनैतिक सूझ-बूझ के कारण इतिहासकारों ने उसे जाटों का प्लेटो (Plato) बताया है।

दिल्ली-मथुरा-आगरा क्षेत्र में जाटों के संघर्ष के इन्हीं दिनों में गोपाल सिंह तेवथिया फरीदाबाद के निकट सिही गांव में आकर बसे। सिही में ही महाकवि सूरदास पैदा हुए थे। जिस साल गोपाल सिंह सिही आये, उसी साल औरंगजेब की मृत्यु हुई। मुगल सत्ता के खिलाफ गोपाल सिंह ने भी अपने पौरुष और पराक्रम से उस इलाके में अपना आधिपत्य जमा लिया। बिखरते मुगल शासन ने उसका लोहा मानकर उसे फी

रुपया एक आना कमीशन दर पर फरीदाबाद परगने की मालगुजारी वसूलने का काम सौंपा। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र चरण दास पर यह जिम्मेदारी आयी। चरण दास साधु आदमी थे। दान-दक्षिणा, पूजा-पाठ में अधिक समय बिताते थे। वह समय से खजाने में मालगुजारी जमा नहीं कर सके और बन्दी बना लिए गये। चरण दास के पुत्र बलराम सिंह को पिता को छुड़ाने की एक तरकीब सूझी। उन्होंने थैलियों में ताम्बे के सिक्के भर कर ऊपरी तहों में सोने के सिक्के बिछा दिये औरउन्हें खजाने में जमा करा दिया। जब तक उन थैलियों का सही भेद प्रकट हो वे पिता के साथ भरतपुर के जाट महाराजा सूरजमल की शरण में पहुंच गये। महाराज सूरजमल का शौर्य और प्रताप इतना बढ़ा-चढ़ा था कि मुगल दरबार के हर ऊंचे पदाधिकारी उन्हें अपने पक्षमें रखने की निरंतर कोशिश करते थे। अतः महाराजा सूरजमल ने मुगलों से बलराम सिंह को उनके परिवार का पद ही नहीं वापिस कराया, बल्कि उन्हें पांच गांवों की जागीर भी दिला दी। बलराम सिंह ने उथल-पुथल के उस जमाने में फरीदाबाद और पलवल के नवाबों को हरा कर दो सौ गांवों पर अधिकार कर लिया और अपने को महाराजा घोषित कर दिया। गुड़गांवा के बल्लभगढ़ में उन्होंने अपना किला बनाया। भरतपुर राज्य से संबंध अटूट रखने के लिए वहां के प्रमुख दरबारी, होडल के मुखिया की सुन्दरी कन्या से उन्होंने विवाह कर लिया।

बलराम सिंह के असाधारण साहस की एक रोमांचकारी किंवदन्ती क्षेत्र की ग्राम-गाथाओं में अब तक प्रचलित है। मुगल वज़ीर नजीबुद्दौला ने सन् 1763 में शाहदरा के पास महाराजा सूरजमल की धोखे से हत्या करा दी। तब भरतपुर की महारानी के आग्रह पर उन्होंने नजीबुद्दौला से बदला चुकाने के लिए दिल्ली पर आक्रमण किया। नजीब हारते-भागते लालकिले में जा छिपा। बलराम सिंह सेना समेत लालकिले में आ डटे। लालकिले का दरवाजा लोहे की बड़ी नुकीली कीलों से जड़ा था। हाथियों ने उस पर प्रहार करने के लिए आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। बलराम सिंह तब कीलों को ढक कर सामने खड़े हो गये और अपने सहायक जवाहर सिंह को उन्होंने हुक्म दिया —"हाथियों को आगे बढ़ाओ।" जवाहर सिंह परिणाम की कल्पना कर भय से सुन्न हो गया। बलराम सिंह ने तब गर्ज कर कहा—"जवाहर सिंह, कायर मत बनो। युद्ध के मैदान में जीना मरना कोई महत्त्व नहीं रखता।" जवाहर सिंह को हाथियों को हांकना पड़ा। दरवाजा टूटा और लाल किले पर बलराम सिंह की फौजों का कब्जा हो गया। नजीबुद्दौला और उसके सैकड़ों सैनिक मारे गये। इस तरह बलराम सिंह ने महाराजा सूरजमल की हत्या का बदला चुका लिया।

उन्हीं बलराम सिंह के वंशज नाहर सिंह थे। बल्लभगढ़ राज्य की कीर्ति पताका उनके समय में खूब लहराई। वे बड़े शौर्य के महान देशभक्त थे और पश्चिमी प्रदेशों के सन् 1857 की राज्य क्रांति के अग्रदूतों में से एक थे। सन् 1856 में गढ़ मुक्तेश्वर के

कार्तिकी मेले में उन्होंने एक गुप्त बैठक बुलायी थी, जिसमें तांत्या टोपे, रिवाड़ी के राजा किशन गोपाल, मंगल पाण्डे और महाराजा ग्वालियर समेत अनेक देशभक्तों ने भाग लिया। कुछ ही दिनों बाद मेरठ छावनी में आज की पंजाब रेजिमेन्ट के पास स्थित शिव मन्दिर में, इन लोगों की दूसरी बैठक जुटी। जनश्रुति है कि उत्तर भारत की छावनियों में राजा नाहर सिंह ने ही उन रहस्यपूर्ण चपातियों का वितरण कराया था, जिसमें विद्रोह की तारीख और समय उल्लिखित थे। दुर्भाग्य से विद्रोह की तिथि और समय का ठीक-ठीक पालन नहीं हुआ। मंगल पाण्डे ने 29 मार्च सन् 1857 को बैरकपुर छावनी में अपने कमांडर पर गोली दाग दी। आठ अप्रैल को वे फांसी पर लटका दिये गये। 10 मई को मेरठ छावनी में विद्रोह की ज्वाला भड़की। उसके साथ ही अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुर शाह ज़फ़र के नाम पर दिल्ली के चारों ओर क्रान्ति की लपटें उठने लगीं। राजा नाहर सिंह ने गाजियाबाद के निकट हिन्डन के किनारे ब्रिटिश सेना को करारी मात दी। उनके अपराजेय शौर्य से अंग्रेजों ने उनके खिलाफ कुछ नीचतापूर्ण जाल बिछाया। उन्हें सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बहादुर शाह जफ़र के नाम से एक जाली चिट्ठी भेजकर दिल्ली बुलाया गया। चिट्ठी पर विश्वास कर वे दिल्ली के लिए चल पड़े। निजामुद्दीन के निकट अंग्रेजों की सेना ने घात लगा कर उनको घेर लिया। राजा नाहर सिंह पर धोखाधड़ी अब प्रकट हुई। वे लड़ते-लड़ते व्यूह को तोड़ कर आगे बढ़े। दिल्ली दरवाजे के पास युद्ध में वे घायल हो गये। अंग्रेजों ने उन्हें 3 सितम्बर सन् 1857 को बन्दी बना लिया। सैनिक अदालत में मुकदमे की कार्यवाही की खानापूर्ति कर उन्हें चांदनी चौक में फांसी पर लटका दिया गया। उसी दिन दिल्ली कोतवाली के सामने अंग्रेजों ने, केवल आतंक फैलाने के लिए, सैकड़ों निरपराध देशभक्तों को सरेआम फांसी पर लटकाया। बहादुर शाह जफ़र किले से भागकर हुमायूं के मकबरे में जा छिपे थे। उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने उनके दो राजकुमारों को कत्ल किया और उन्हें देश निकाला देकर रंगून (बर्मा) की जेल में कैद कर दिया। राज्य क्रांति असफल हो गयी।

अंग्रेजों ने राजा नाहर सिंह के बल्लभगढ़ और तेवथिया परिवार पर अमानुषिक अत्याचार किया। बल्लभगढ़ में आज भी उसकी लोमहर्षक कहानियां सुनी जा सकती हैं। उन बर्बर अत्याचारों से बचने के लिए असहाय देशभक्त बल्लभगढ़ छोड़कर भागे। महारानी और राजकुमारियों को जंगल में भटकना पड़ा। तेवथिया परिवार बहुत बड़ा था। वे सभी दूर-दूर के गांवों में चले गये। इन्हीं में चौधरी चरण सिंह के पूर्वज थे।

चौधरी चरण सिंह के पितामह बादाम सिंह बुलन्दशहर जिले के भटौना गांव में आये। भटौना में शरणार्थियों की बड़ी भीड़ थी। धीरे-धीरे ये शरणार्थी वहां से पास-पड़ोस के 117 गांवों में फैल गये। वे लोग आज भी भटौनिया कहलाते हैं। चौधरी

बादाम सिंह हापुड़ तहसील के सियामी गांव में आये । उनकी पांच सन्ताने थीं । सबसे बड़े पुत्र का नाम चौधरी लखपत सिंह था और सबसे छोटे का चौधरी मीर सिंह ।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में यह परिवार जीविका की तलाश में सियामी से नूरपुर गांव में आया । तब चौधरी मीर सिंह की उम्र अठारह साल थी । यहां कुचेसर राज्य की थोड़ी सी जमीन बटाई पर खेती करने के लिए मिल गयी । सिंचाई के लिए कुआं खोदा गया । बंजर जमीन में मड़ैयां छायीं गयीं, जिनमें चरण सिंह का जन्म हुआ । अपने स्वदेश प्रेम के गौरवपूर्ण अतीत की गरिमा में परिवार का बालक के जन्म पर खुशी से फूल उठना स्वाभाविक था ।

जाट लोग इतिहास के आदिकाल से ही परम साहसिक और मेहनती रहे हैं । तेवथिया गोत्र के भटौनियों के बारे में तो यह मशहूर है कि जहां उन्हें बैलगाड़ी खड़ी करने भर को जमीन मिल जाय, वहीं वे खेती उपजा लेते हैं । जाट कभी हूण वंश से मिश्रित भले हो गये हों, मूल रूप से वे आर्य हैं। महाभारत युद्ध में उनकी कई उपजातियों (गोत्रों) के भाग लेने का विवरण मिलता है । अधिकांश विद्वानों के मतानुसार वे वैदिक आर्यों के निकटतम प्रतिरूप हैं । वैदिक संस्कृति कृषि पर आधारित होने के कारण पाशुपतेय भी कहलाती है । जाट उतने ही कुशल कृषक रहे हैं जितने पौरुष वाले योद्धा । वे कमर में तलवार बांध कर खेती करते आये हैं । ये परम साहसिक लोग आज भी संसार के जिस अंचल की धरती को छू देते हैं, वही सोना उगलने लगती है । जाट सैनिकों की अद्भुत वीरता के रोंगटे खड़े करने वाले बेमिसाल कारनामे कहीं भी सुने जा सकते हैं । पंजाबी जाटों के सिख राज्य के बारे में कौन नहीं जानता कि वह बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में सतलज से अफगानिस्तान तक सपाट फैल गया था । सतलज के पूरब तक दिल्ली-आगरा क्षेत्र में भरतपुर के जाट राज्य का विवरण ऊपर आ ही चुका है ।

जाटों का एक और स्वाभाविक गुण है—पंचायत का अगाध प्रेम । उनके गांव अपने में पूरे गणतंत्र होते थे । यह वेद-कालीन परम्परा थी । देश के राजा से मात्र मालगुजारी अदा करने का इन गांवों का सम्बन्ध रहता था । गांव के पांच बड़े-बूढ़े पंच-परमेश्वर के हाथ में गांव की हर समस्या को तौल कर निपटाने की तराजू होती थी । पंचायत का सरदार वंशगत नहीं, बल्कि योग्यता से निर्धारित होता था । जाटों का यह नैसर्गिक गुण आज भी अलक्षित नहीं ।

चौधरी चरण सिंह के पिता चौधरी मीर सिंह में उपर्युक्त सभी गुण जन्मजात थे । नूरपुर की थोड़ी सी भूमि में कड़ी मेहनत और लगन से खेती अच्छी होने लगी । लेकिन भूमि बटाई की थी और बहुत कम थी । अतः परिवार के बढ़ने के साथ खेती योग्य भूमि की मांग भी बढ़ी । अन्य तेवथिया अथवा भटौनियों के साथ नयी जमीन ली गयी मेरठ नगर के बड़े जमींदार पत्थर वालों से, तहसील मेरठ के जानी खुर्द गांव में ।

पत्थर वालों के परिवार में ही सर सीताराम पैदा हुए थे, जो अपने संस्कृत के अगाध ज्ञान के कारण पंडित सीताराम कहलाते थे। जमीन परिवार के अगुआ के नाम खरीदी जाती थी। ईमानदारी से हर सदस्य को उसका हिस्सा मिल जाता था, कहीं न कपट न कोताही। जानी खुर्द की नयी जमीन चौधरी चरण सिंह के पिता के हिस्से में आयी। चौधरी साहब जब छः महीने के थे तब उनके पिता जानी खुर्द आ गये। वहां भी खेतों के बंजर में छप्पर पड़े, मड़ैयां बनीं। छप्परों के इस समूह का नाम तेवथिया परिवारों के तत्कालीन बुजुर्ग के नाम पर रखा गया भूपगढ़ी। आज भी वही नाम प्रचलित है।

चौधरी मीर सिंह पढ़े-लिखे नहीं थे। थे किन्तु बड़ी प्रखर बुद्धि के। उनका सहज ज्ञान इतना अच्छा था कि पास-पड़ोस के गांवों के लोग अपने खेतों के ही नहीं, पारिवारिक झगड़े आदि के संबन्ध में बहुधा उन्हीं से मशविरा लेते थे। उनकी स्मरण शक्ति भी बड़ी तेज थी। वे मिनटों में बड़े-बड़े जोड़-घटाना लगा लेते थे और उंगलियों के पोरों से ही खेतों का रकबा और नम्बर तक सही-सही बता देते थे। उनके आसपास के लोग उनकी सहज बुद्धि का लोहा मानते थे। उनके न्यायप्रिय होने के कारण गांव वालों का उन पर बड़ा विश्वास था। उनके प्रभाव से गांव का कोई ही मुकदमा अदालत जाता। जिला प्रशासन ने उन्हें मुखिया और लम्बरदार करार दे दिया। सभी लोग उन्हें आदर और सम्मान से मुखिया कहने व मानने लगे। जन समूह पर उनका यह असाधारण प्रभाव उनकी उम्र के अन्तिम समय तक रहा। वे 80 वर्ष की उम्र पाकर 1960 में दिवंगत हुए।

चौधरी चरण सिंह की माता बुलन्दशहर के चितसोना अलीपुर गांव की थीं। उनका नाम नेत्र कौर था। सब उन्हें आदरपूर्वक नेतो कहा करते थे। संयोग देखिये कि वे एक महान नेता की मां बनीं। वे साधारण किसान की पत्नी थीं। मगर थीं अत्यन्त संवेदनशील, सहिष्णु और धर्म-परायण। उन्हें स्वच्छता बहुत प्रिय थी। घर में, बाहर, किसी चीज-वस्तु का बेतरतीब होना उन्हें बुरा लगता था। चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्व में समाये ये गुण उन्हें माता से मिले हैं। उनकी याददाश्त, कुशाग्रता, दृढ़ता और प्रशासन की श्लाघ्य दक्षता उन्हें पिता से प्राप्त हुए हैं। माता का सन् 1957 में पचहत्तर वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हुआ।

चौधरी चरण सिंह के परिवार के काफ़िले की खेती के लिए गांव की यात्रा अभी पूरी नहीं हुई थी। भूपगढ़ी में परिवार के पास लगभग साढ़े दस एकड़ जमीन थी। अधिक जमीन की जरूरत पड़ी। गाजियाबाद तहसील के भदौला गांव में पत्थर वालों से ही जमीन खरीदी गयी। पारिवारिक बंटवारे में जानी खुर्द की जमीन चौधरी मीर सिंह को मिली। दूर के एक खानदानी से भूमि का तबादला कर वे भी 1923 में भदौला आ गये।

होनहार बिरवान के

चौधरी चरण सिंह ने आंखें नूरपुर में खोलीं। लेकिन छः महीने की आयु में ही वे मां-बाप के संग जानी खुर्द पहुंच गये। उनका शैशव जानी खुर्द के पास के भूपगढ़ी की मिट्टी में ही पला बढ़ा। यहीं की कीचड़ धूल में वे खेले। यहीं के खेतों की हरीतिमा और सरसों तथा फलों-फूलों की बासन्ती आभा से उनके नयन नाचे, यहीं की वायु ने उन्हें पाल-पोस कर शिशु से बालक बनाया। यहीं मां ने वृन्दावन के श्री कृष्ण महाभारत-युद्ध के वीरों और जाट सरदारों की उन्हें लोरियां सुनायीं। यहीं तेवथिया वंश के अंग्रेजों के विरुद्ध सन् 1857 की राज्य क्रान्ति में सर्वस्व समर्पण कर बलिदान हो जाने की कहानियां सुनायी। उन वीर गाथाओं से शिशु चरण सिंह का मन कितना उल्लसित हुआ होगा। जानी खुर्द अथवा भूपगढ़ी के आस-पास के खेतों, बागों, जलाशयों में धरती के लालों के करिश्मों को शिशु चरण सिंह ने देखा होगा। इन लालों का लोहा मानकर धरती सोना उगलती है। शिशु चरण सिंह के मन पर इसका अज्ञात रूप में प्रभाव पड़ा होगा। कोई अजब नहीं कि बाद में वह खेतों और किसानों की पेचीदा से पेचीदा गुत्थियों को बड़ी सुगमता से निपटा सका। वैसा देश भर में किसी दूसरे ने नहीं किया।

सात साल की उम्र में चरण सिंह को जानी गांव की प्रारम्भिक पाठशाला में भर्ती कराया गया। पढ़ने में वह तेज था, बहुत तेज। गणित में उसकी कुशाग्रता असाधारण थी। मास्टर के मुंह से सवाल पूरा नहीं हुआ कि बालक चरण सिंह के मुंह से सही जवाब निकल आया—बिना स्लेट पेंसिल के, बिना जोड़ घटाना लगाये। स्कूल के अध्यापक पण्डित हरवंश लाल ने होनहार बिरवान को बड़े स्नेह और यतन से संवारा-सजाया। एक बार संगी साथियों के साथ स्कूल आते समय बीच के बाग में जामुन खाने के लिए रुकने से स्कूल पहुंचने में देर हो गयी। पण्डित हरवंश लाल को खबर लगी। वे वहां आ पहुंचे। कुछ बच्चे पेड़ पर, कुछ नीचे थे। चरण सिंह भी नीचे था। पण्डित हरवंश लाल सबको स्कूल लाये। देरी करने के लिए सजा मिली। चरण सिंह को भी एक बेंत लगा। बेंत मार कर चरण सिंह से अधिक दुःखी पण्डित हरवंश लाल हुए। चरण सिंह ने फिर कभी अनुशासन में भूल चूक नहीं की। 'ब' कक्षा पास करने के बाद ही जब सब-डिप्टी-इन्सपेक्टर ने स्कूल का निरीक्षण किया तब चरण सिंह की तेज बुद्धि से प्रभावित होकर उससे दो महीने बाद पड़ोस के सिवाल गांव के प्राइमरी

स्कूल में जाकर अगली कक्षा का भी इम्तहान देने को कहा। पण्डित हरवंश लाल फूले नहीं समाये। बालक चरण सिंह को उन्होंने सिवाल के स्कूल में जाकर अगली कक्षा का पाठ्यक्रम समझने-देखने को कहा।

सिवाल भूपगढ़ी से दो-ढ़ाई मील दूर था। बीच में गंग नहर पड़ती थी। रास्ता ऊबड़-खाबड़, टेढ़ा-मेढ़ा, ऊंचे-नीचे डगरों से गुजरता था। नौ-दस वर्ष का बालक घोड़े पर सवार होकर अकेले आता जाता था। वही काफिले का शौर्य, अदम्य साहस और निर्भीकता। राहगीर उसे क्षण-पल को देखते रह जाते थे। सिवाल में दो-तीन महीने बाद उसने अगली कक्षा का इम्तहान पास कर लिया। सिवाल के स्कूल के अध्यापक और विद्यार्थी बालक की विलक्षण प्रतिभा पर दंग रह गये।

इम्तहान में एक घटना भी घटी। जिसका चरण सिंह पर अनायास ही जीवन भर के लिए प्रभाव पड़ा। पास-पड़ोस का एक मुसलमान बालक भी सिवाल में उसी कक्षा का इम्तहान दे रहा था। उसने चरण सिंह से अनुरोध किया कि परीक्षा देते समय वह अपनी स्लेट ऐसी आड़ी रखे कि वह आसानी से नकल कर सके। चरण सिंह ने नकल करायी। मुसलमान बालक ने चरण सिंह को एक छोटा कुतुब-नुमा (कम्पस) भेंट किया। घर पर पिता ने कम्पस के बारे में पूछा। चरण सिंह ने नकल कराने की बात बतायी। पिता ने पूरी बात सुनकर कहा कि ऐसा करना गलत हुआ। गलत काम कभी नहीं करना चाहिए और न ही इसके बदले किसी हालत में कोई उपहार लेना चाहिए। चरण सिंह के मन में पिता की सीख जीवन भर के लिए बैठ गयी।

भूपगढ़ी के बड़े-बूढ़ों ने अगली कक्षा का इम्तहान पास कर लेने के लिए चरण सिंह को बहुत आशीर्वाद दिया। बड़े-बूढ़ों का आशीर्वाद फलता है, फला भी। भूपगढ़ी से जानी खुर्द के स्कूल के लिए सबेरे, दोपहर और शाम को पैदल आना-जाना पड़ता था। जानी खुर्द भूपगढ़ी से दो-तीन फरलांग ही है। दूसरे लड़कों का संग भी रहता था। मगर बालक चरण सिंह सबसे कुछ अलग-थलग पाया जाता था। वह जैसे किन्हीं अनजान भावों में खोया रहता हो। उसकी भाव-प्रवण आंखों की पलकें अनदेखे सपनों के बोझ से अर्धनिमीलित रहती थीं। आज भी उनकी गरिमा वही है। उसका मन खेतों की हरियाली और सोने सी उगी फसलों के संग हिलोरे लेता रहता था। मन खेतों की हरीतिमा से आज भी भरा है। वह सीधा-साधा और सरल स्वभाव का तो था ही। मां से मिली बचपन की यह शुचिता और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, पिता से प्राप्त कुशाग्र बुद्धि और परदु:ख कातरता आज उसके व्यक्तित्व के मूल आकर्षण हैं। आज भी, जब वह अस्सी की आयु पार कर चुके हैं, उनके बचपन की रूप-गरिमा उनके स्वरूप में साफ झलकती है। अन्याय के विरुद्ध भी बालक की आस्था घर में ही जागी। घर में माता-पिता के बीच खटपट होती ही रहती है। पिता चौधरी मीर सिंह कामकाजी और व्यस्त आदमी थे। वह लोगों से प्राय: घिरे रहते थे। वे

आवेश में कभी-कभी झल्ला जाते थे, पत्नी को भी डांट-डपट देते थे। चरण सिंह को यह बहुत बुरा लगता था। सेवा के जीवन में शान्ति के संग तनाव भी कम नहीं होता। फिर दम भर की मां बाप की खट-पट में वह कर भी क्या सकता था? लेकिन पिता के अन्याय को वह समझता था, उससे दुःखी होता था। बाद में चौधरी चरण सिंह को जीवन भर अन्याय और अत्याचार से लड़ना पड़ा। वह लड़ा भी निराली शान से। उसने कभी धीरज नहीं खोया, कभी लड़ने वाले शख्स से मन में कीना नहीं रखा, कभी विरोधी को नीचे घसीट कर स्वयं ऊपर जाने की कोशिश नहीं की। उसके व्यक्तित्व में अनवरत संघर्ष की छाप दृढ़ता और अथक निष्ठा के रूप में उभरी है। चौधरी चरण सिंह ने एक बार भरे मन से कहा था,—"मुझे जीवन भर अन्याय के खिलाफ लड़ना पड़ा, अपनों से भी। मेरे मस्तिष्क की तरह मेरा शरीर भी उतना ही सख्त है कि मैं तमाम कष्ट सह सका।"

उसकी इच्छा-शक्ति बचपन से ही दृढ़ थी। एक बार संगी साथियों के संग उसने जानी खुर्द में तब बहुत प्रचलित एक 'लालटेन' सिगरेट खरीदी। खेतिहर परिवारों में विशेषकर जाटों में, हुक्के का चलन जोरों से था यद्यपि पिता चौधरी मीर सिंह हुक्का छूते नहीं थे। उस बारे में भी परिवार वर्ग में एक किस्सा प्रचलित है। वह यह है कि एक बार चौधरी मीर सिंह को उनके पिता ने हुक्का भर लाने को कहा। वे जल्दी में कोयलों और सींक पात की आग से चिलम भर लाये। चिलम कन्डे की आग से जगती है। पिता ने आग देखकर गुस्से से एक चपत लगा दिया। चौधरी मीर सिंह ने उसके बाद कभी हुक्का या चिलम छुआ तक नहीं। बालक चरण सिंह ने भी 'लालटेन' सिगरेट को जला कर एक दो कश लिया। उसका सिर चकराया और वह जोरों से खांसने लगा। सिगरेट उसने खीझ कर फेंक दी। उस दिन के बाद उसने फिर कभी सिगरेट नहीं छुई, न ही किसी दूसरे प्रकार का धूम्रपान किया।

मांसाहार के बारे में भी ऐसा ही हुआ। परिवार निरामिष था। दूर के रिश्ते के एक चाचा मांस खाते थे। उनके कहने पर बालक चरण सिंह ने चाचा के संग एक बार मांस खाया। वह अरुचिकर भी नहीं लगा। उन्हीं दिनों चलते-फिरते उसने एक आर्यसमाजी भजन सुन लिया। उस भजन का भावार्थ था कि मांस पेट को कब्रिस्तान बना देता है। भाव मन में जम गया। चरण सिंह ने फिर कभी मांस नहीं खाया।

अपने पिता को हमेशा लोगों से घिरे रहते देख कर बचपन से ही बालक चरण सिंह के मन में लोगों के बीच रहने की उत्कट इच्छा जागी। उसके सार्वजनिक जीवन में लोग सदा उसे घेरे रहते थे। आज भी जब वह इक्यासी वर्ष के हैं, उनके घर पर मुलाकातियों का तांता लगा रहता है। हिन्दुस्तान के हर राज्य के, हर श्रेणी के लोग उनसे अपनी समस्याओं को लेकर मिलने आते हैं। कभी-कभी वे जरूर कहते हैं कि लोगों से भेंट करता-करता मैं थक जाता हूं। बालक के मन में एक दूसरी जिज्ञासा

Primary Education

ने भी उन्हीं दिनों असमंजस पैदा किया। वह समझ नहीं पाता था कि आदमी मरता क्यों है ? उसे बताया गया कि वह सृष्टि का क्रम है । तब उसके मन में आया कि वह मर कर भी अमर बने । महत जन समय की रेती पर अपने चरण-चिन्ह छोड़ जाते हैं। चौधरी चरण सिंह का सारा ही जीवन देश के बहुसंख्यक गरीबों, पीड़ितों और शोषितों के लिए समर्पित रहा है, बहुजन हिताय रहा है। इतिहास और देश काल क्या कभी उनको भूल पायेगा ?

जानी खुर्द की प्राइमरी स्कूल का आखिरी साल आ पहुंचा। बालक चरण सिंह ने अव्वल अंकों से परीक्षा पास की। वह जन्मजात सादगी और ऊंचे विचार के साथ पिता से अन्याय और अत्याचार के प्रतिकार की दृढ़ता, अद्भुत याददाश्त के साथ-साथ माता से स्वच्छता और अनुशासन की क्षमता तथा सम्वेदनशील और सहिष्णु हृदय लेकर आगे पढ़ने के लिए मेरठ आया। परिवार अभी अभावग्रस्त ही था। गांवों में तब पढ़ाई पर इतना जोर भी नहीं था। लेकिन पिता ही नहीं, ताऊ लखपति सिंह भी ऐसे होनहार बालक की पढ़ाई रोकना नहीं चाहते थे। उन्होंने उसके आगे पढ़ने का बानक बनाया।

तब राजकीय स्कूलों की पढ़ाई और अनुशासन मशहूर थे। चरण सिंह जिला राजकीय स्कूल में दाखिले के लिए मेरठ आया। बोर्डिंग का खर्च चलाने की क्षमता अभिभावकों में थी नहीं। इसलिए बालक के पढ़ने व रहने का इन्तज़ाम मेरठ में 'मॉरल ट्रेनिंग स्कूल' नामक एक प्राइवेट संस्थान में किया गया। इसी को शुभ संयोग कहते हैं। बालक चरण सिंह को विद्या अर्जन ही नहीं करना था, उससे कहीं बढ़ कर विवेक, नैतिकता और चरित्र को ऊंचा करना था। मॉरल ट्रेनिंग स्कूल का यही उद्देश्य था ।

मेरठ शहर में बुढ़ाना दरवाजे से तहसील को जो सड़क जाती है, उस पर बायीं ओर के पहले मकान के ऊपर के तल्ले पर यह संस्था स्थापित थी। एक सुयोग्य तथा अनुभवी अध्यापक, मास्टर शादी राम, उसे चलाते थे। वह भी गुड़गांवा जिले के रहने वाले थे। जहां से चौधरी चरण सिंह के पूर्वज, 1857 की राज्य क्रान्ति के बाद उजड़ कर मेरठ आये थे। इस संस्थान में सादगी, नैतिकता, श्रम तथा ऊंचे विचारों का वातावरण था। बालक चरण सिंह में इन सद्गुणों के अंकुर जम ही चुके थे। 'मॉरल स्कूल' के आदर्श वातावरण में उसका किशोर मन खिल उठा। अनुकूल वातावरण से उसकी प्रतिभा तेजी से पनपी। वह बड़ों का स्नेह-भाजन बना और सहपाठियों का आदर्श। एक थे पंडित हरनाम सिंह, कोर्ट ऑफ वार्डस, मुरादाबाद में मैनेजर। जब मेरठ आते थे, तब मास्टर शादी राम वाले मकान में ठहरते थे। वह मकान भी कोर्ट ऑफ वार्डस के इन्तजाम में था। पंडित हरनाम सिंह कुछ ज्योतिष, व हस्तरेखा का ज्ञान रखते थे। बालक चरण सिंह की अद्भुत क्षमता से वे भी प्रभावित हुए। उन्होंने उसका हाथ देखकर कहा—"बेटा,

तू राजा होगा।" मास्टर शादी राम गद्‌गद् हो उठे। बालक तेज और सुशील तो था ही, वह बड़े-बूढ़ों की सेवा टहल भी कर दिया करता था। मास्टर शादी राम के ताऊ की आंखों की ज्योति मंद थी। बालक उन्हें खाना खिलाता था। उनकी चिलम भी नियम पूर्वक भर दिया करता था। बूढ़े ताऊ की अवस्था अस्सी साल से ऊपर की थी। उन्होंने और मास्टर शादीराम ने चरण सिंह को शत्‌शत् आशीर्वाद दिया कि वह ऊंचाई के शिखर पर पहुंचे—बृथा न होहि देव ऋषि वाणी !

'मॉरल ट्रेनिंग स्कूल' में एक साल पढ़ने के बाद सन् 1914 में राजकीय हाई स्कूल की छठवीं कक्षा में उसका दाखिला हुआ। वहां भी चरण सिंह खूब चमका। वह कक्षा के अव्वल विद्यार्थियों में गिना जाने लगा। उसे हमेशा प्रथम श्रेणी के अंक मिलते थे। सभी अध्यापक उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। सबको उससे बड़ी आशाएं थीं। बालक चरण सिंह अब किशोर हो रहा था। आठवीं के बाद नवीं कक्षा में उसने विज्ञान का वैकल्पिक विषय लिया। उन दिनों अच्छे विद्यार्थियों में से गिने-चुने ही विज्ञान विषय में प्रवेश पाते थे। विज्ञान की पढ़ाई कठिन थी। इसलिए चरण सिंह पढ़ाई में अपना सारा समय लगाने के लिए नवीं कक्षा में राजकीय स्कूल के छात्रावास में आ गया। अभिभावकों ने खर्च जुटाया। पढ़ने के साथ-साथ बालक चरण सिंह खेल-कूद में भी पीछे नहीं रहता था, हाकी में वह जिला स्कूल की दूसरी टीम में चुन लिया गया। वह विज्ञान का विद्यार्थी था, लेकिन साहित्यिक और आर्थिक विषयों में उसकी बड़ी दिलचस्पी थी, उसकी अंग्रेजी बहुत अच्छी थी। अंग्रेजी में लिखे साहित्यिक और आर्थिक विषयों के लेखों की अध्यापक बड़ी सराहना करते थे। मेरठ के सुप्रसिद्ध वकील श्री शंकर दयाल माथुर चरण सिंह के स्कूल की कक्षाओं में सहपाठी थे। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि स्कूल के दिनों में भी चरण सिंह अत्यन्त सादा, किन्तु गम्भीर विचारों में खोया हुआ विद्यार्थी लगता था। वह साधारण किसानों के लड़कों की तरह गुमसुम-सा रहता था, फिर भी उसमें ऐसा आकर्षण था कि सभी उससे मेलजोल बढ़ाना चाहते थे। वह जल्दी किसी का मित्र बन नहीं पाता था। वह अपने में ही मग्न रहता था—एकांत सेवी था।

मेरठ दिल्ली जितना ही प्राचीन नगर है। दिल्ली के पास भी है। महाभारत काल का हस्तिनापुर यहीं था। राजा परीक्षित का गढ़ भी यही था। जैन तीर्थंकरों के प्राचीन मन्दिर भी हस्तिनापुर के पास हैं। गंगा पर देश-प्रसिद्ध गढ़मुक्तेश्वर का तीर्थ भी इसी जिले में पड़ता है। उसी गढ़ के कार्तिकी मेले में सन् 1856 में राजा नाहर सिंह ने क्रान्ति के सेनानियों की गुप्त बैठक बुलायी थी। मेरठ पौराणिक मयराष्ट्र का भाग था। मुसलमान शासन में भी दिल्ली और मेरठ का घनिष्ठ सम्बन्ध था। यहीं की बोली से अमीर खुसरो की हिन्दी विकसित हुई, जिसे आज खड़ी बोली या हिन्दी कहते हैं। उर्दू इसी हिन्दी की एक शैली है। विदेशी मुसलमान शासकों का मेरठवासी कमर

कसकर विरोध भी करते रहे। लेकिन जब विदेशी शासक यहीं के हो गये, स्वदेशी बन गये, तब से यहां की मौलिक संस्कृति पर शासकों के साथ आयी विदेशी संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा। वह आज भी उस क्षेत्र के गांव-गांव में हिन्दू-मुसलमानों के बीच देखी जा सकती है। ब्रिटिश सत्ता की जड़ उखाड़ने के लिए सन् 1857 की राज्य क्रान्ति की लपटें यहीं से भड़कीं। आज भी मेरठ से दिल्ली जाने वाली पुरानी सड़क पर चलने में इतिहास के विद्यार्थियों को ऐसा लगता है कि हिन्दू-मुसलमान फौजियों की टोलियां बड़े जोश और सरगर्मी से मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर को स्वतंत्र कराने के लिए दिल्ली की ओर बढ़ रही हैं। उनके पदचापों की प्रतिध्वनि मौन स्वरों में आज भी साफ-साफ सुनी जा सकती है। हिन्डन के पुल के पास का वह मैदान अभी सुरक्षित हैं, जहां मेरठ के फौजियों की दिल्ली की अंग्रेजी फौजों से पहली मुठभेड़ हुई थी। अंग्रेजों ने वहां बाद में स्मारक बनाया। वह मैदान अब पुराना पड़ता जा रहा है। मगर वह आज भी हिन्दू-मुसलमानों के एकजुट होकर अंग्रेजों को मार भगाने के प्रयत्नों का सन्देश देता है। मेरठ की ही सरधना की बेगम सुमरू थी, जिसने दिल्ली के विजेता जनरल लेक के छक्के छुड़ा दिये थे। सन् सत्तावन की क्रान्ति में विजय पाकर अंग्रेजों ने इस क्षेत्र को सामरिक महत्त्व का मानते हुए यहां अंग्रेजी फौजों की बड़ी छावनी बसायी। कालक्रम से उनकी हिन्दुस्तानी फौजों की भर्ती और सिखलाई भी यहां होने लगी। यहां के जाट, गूजर, राजपूत, भारी संख्या में फौज में भर्ती हुए। चौधरी साहब के निकट के दो सगे ताऊ सन् 1899-1902 के दक्षिण अफ्रीका के 'बोअर' युद्ध में लड़े थे। उनके भाई भी फौज में थे। बाद में फौज छोड़कर कांग्रेस में आये। कांग्रेस में मेरठ अंचल के ग्रामीण क्षेत्रों में उन्होंने नुमाया कायम किया। बेगम समरू के सम्पर्क के कुछ फ्रांसीसी परिवार मेरठ में बस गये थे। जमींदारियां भी खरीद ली थीं। मेरठ की, दिल्ली से छोटा होते हुए भी, सर्वदेशीय संस्कृति रही है। उस मेरठ ने अंग्रेजों की फौजों के विरुद्ध युद्ध के साथ-साथ कांग्रेस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। हिन्दुस्तान में कहीं भी देश की आजादी के लिए जो कुछ होता, उसकी लहर वहां जरूर फैलती। चौधरी साहब ने एक बार जब वे उत्तर प्रदेश कांग्रेसी शासन में मन्त्री थे, अपने दौरे में मंगल पाण्डे (1857 के विद्रोही सेनानी) की यादगार में निर्मित मंगल पाण्डेय बाजार को दिखाते हुए कहा था कि मेरठ ने आजादी की हर लड़ाई में पथ-प्रदर्शन किया। मैंने विनोद भाव से कहा था—"हां सर, लेकिन हमेशा पूरब के किसी आदमी को इसके लिए आना पड़ा।" अमर सेनानी मंगल पाण्डे गाजीपुर जिले में तब शामिल बलिया अंचल के रहने वाले थे। चौधरी साहब परिहास पर विनोद भाव से चुप रह गये थे।

किशोर चरण सिंह पर मेरठ की संस्कृति तथा वहां के जन आन्दोलनों का असर पड़ना स्वाभाविक था। बंग-भंग के आन्दोलन में स्वदेशी वस्त्रों की मेरठ में भी सरगर्मी

रही। सन् 1914 में पहला विश्वयुद्ध छिड़ गया। हिन्दुस्तान का जनमानस तब भी ब्रिटिश हुकूमत का विरोधी था। लार्ड मिन्टो की हिन्दू-मुसलमानों की पृथकतावादी नीति से सब चिढ़े थे। हिन्दू मुसलमानों में सदा के लिए चौड़ी खाई खोदने की वह प्रभावकारी नीति थी। हिन्दुस्तान में स्वायत्ता की मांग भी बढ़ने लगी थी। तिलक महाराज ने होम रूल लीग स्थापित किया था, जिसकी बाद में श्रीमती एनी बेसेन्ट अध्यक्ष बनीं। होम रूल का आन्दोलन शिक्षित वर्गों में तेजी से फैल रहा था महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत आ चुके थे। 1917 में रूस की राज्य क्रान्ति ने विश्व की साम्राज्यशाही ताकतों को चकित कर दिया था। हिन्दुस्तान में भी ब्रिटेन के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ा, मजदूरों ने बम्बई में बड़ी व्यापक हड़ताल की। देश की यह पहली बड़ी हड़ताल थी। अंग्रेजी साम्राज्य घबराया। रूस की राज्य क्रांन्ति के एक सप्ताह के भीतर ही उसने मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा कर दी। सुधारों की घोषणा जनमत को भ्रमित करने के लिए थी। इसमें कतिपय महत्त्वहीन विभागों को नाममात्र के लिए हिन्दुस्तानियों को दिया गया था। उसके साथ-साथ ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने हिन्दुस्तान में स्वतन्त्रता की सरगर्मी को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए रौलट ऐक्ट लागू किया। महात्मा जी तब तक ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही भारतीय स्वायत्तता का सपना पाल रहे थे। उन्होंने क्षुब्ध होकर ऐक्ट के विरोध में आम हड़ताल का आह्वान किया। हड़ताल देश भर में बेहद सफल रही। अंग्रेजी सरकार औरंगजेब की नीति पर चल रही थी। शान्त प्रदर्शनकारियों पर चांदनी चौक, दिल्ली, में गोलियों की अमानुषिक वर्षा की। सैकड़ों लोग हताहत हुए। उनके खून के कतरे चिनगारी बन समूचे देश में फैले। दिल्ली काण्ड के हफ्ते भर बाद ही जलियांवाला बाग, अमृतसर, में डायर ने चारों ओर का निकलने का रास्ता बन्द कर शान्त सभा की निहत्थी भीड़ पर मशीनगन की गोलियां बरसायीं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार दस मिनट की गोलाबारी में 379 लोग मरे, और 1200 बुरी तरह घायल हुए। वास्तव में मरने वालों और घायलों की संख्या कहीं अधिक थी। उनमें निरीह औरतें, बच्चे और बूढ़े सभी थे। देश अंग्रेजों के बर्बर जुल्म से कांप उठा। इन काण्डों का किशोर चरण सिंह के मन पर भी भारी असर पड़ा।

जिन दिनों उपरोक्त गोली काण्ड हुए, उन्ही दिनों हाई स्कूल की परीक्षा चल रही थी। चरण सिंह ने परीक्षा दी, उसमें विशेष योग्यता से वह उत्तीर्ण भी हुआ, लेकिन देश की गुलामी पर उसका कलेजा जल-जल दहने लगा। उसने राष्ट्रीय साहित्य पढ़ना शुरू किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' को उसने उन्हीं दिनों पढ़ा। 'भारत-भारती' का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय नेताओं, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी के कार्यकलापों और आदर्शों से वह अखबारों द्वारा परिचित रहता ही था। लोकमान्य तिलक के "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध

अधिकार है" से वह बेहद प्रभावित था। जो अंग्रेजी कम्पनी व्यापार करने आयी थी वह हमारी फूट का फायदा उठा अपनी धोखाधड़ी से यहां की शासक बन बैठी। एक कम्पनी ने हमें गुलाम बना लिया। इससे अंग्रेज शासन के खिलाफ चरण सिंह का रग-रग अंगार बनने लगा। देश काल की इन्ही परिस्थितियों में स्वदेश प्रेम की नई तंरगे और तराने लिए वह गांव लौटा। स्कूल के दुबारा कभी न लौट कर आने वाले दिन छूटे। अब आगे की दिशा की ओर दृष्टि थी। रास्ता साफ दिखलाई पड़ रहा था, परन्तु बायें-दायें झाड़-झंकार भी दिखाई पड़ रहे थे।

कालेज की शिक्षा और विवाह

अभिभावकों ने ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थी को आगे पढ़ाने का निर्णय लिया। आगे कहां पढ़ाया जाय, यह सवाल उठा। मेरठ में भी कालेज था। उन दिनों उत्तर प्रदेश में आगरा और इलाहाबाद के कालेजों की पढ़ाई की अच्छी ख्याति थी। दोनों जगह अंग्रेज प्रिन्सिपल और सुयोग्य अंग्रेज अध्यापक थे। आगरा घर से करीब था। इसलिए युवक चरण सिंह आगरा आया। वहां सन् 1919 में आगरा कालेज में एफ० एस-सी० (विज्ञान) के पहले साल में नाम लिखाया।

आगरा कालेज के छात्रावास में भी उसने दाखिला लिया। आर्थिक स्थिति अच्छी थी नहीं। हिम्मते मर्दा मददे खुदा। पिता और ताऊ ने खर्च का बीड़ा उठाया। साथ ही मदद की मेरठ के एक उदार महानुभाव ने। चौधरी चरण सिंह उनके उल्लेख से आज भी गर्व से भर आते हैं। वह थे मेरठ के सुविख्यात समाजसेवक स्वर्गीय डाक्टर भूपाल सिंह। वह श्रेष्ठ कोटि के डाक्टर थे। उनकी डाक्टरी खूब चलती थी। वह प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देते थे। कितनों की मदद करते थे। उन्होंने कालेज की पढ़ाई के लिए युवक चरण सिंह को 10 रुपये महीना वजीफा देना स्वीकार किया। वजीफे की साल भर की रकम उन्होंने एक मुश्त अग्रिम दे दी। आगरा कालेज और उसके छात्रावास का खर्च साधारण नहीं था। लेकिन जहां गरीबी ही जीवन का प्रकार बनने वाली थी, वहां मुट्ठी संभाल कर काम चल ही जाता। युवक चरण सिंह को अपनी गरीबी पर कभी लाज नहीं लगी। देश के असंख्य बच्चे तब भी और आज भी जब काले धन की चारों ओर भरमार है, भीषण गरीबी की चपेट में झुलस रहे हैं। चरण सिंह में साहस था, परिस्थितियों से जूझने की क्षमता थी। आज उसका सिद्धान्त है कि गरीब देशवासियों के बीच अमीरों का जीवन बिताना चोरों की वृत्ति है। यह उद्देश्य उसकी मन की आंखों में तब भी साफ था। उसे उसी लक्ष्य की ओर बढ़ना था।

वह विज्ञान का विद्यार्थी था। विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए सामान्य अंग्रेजी ही कोर्स में शामिल थी। अंग्रेजी साहित्य, विशेषकर अंग्रेजी कविता से, चरण सिंह को बहुत प्रेम था। गोल्डस्मिथ आदि की कविताओं के कुछ छन्द उन्हें आज भी कण्ठस्थ हैं जिनको वह आज भी आह्लाद से सुना सकते हैं। ऐसी कविताएं उन्हें तब भी और आज भी अनुप्रेरित करती हैं। चरण सिंह स्वयं उजड़े वंश वृक्ष के थे, गांवों की दुर्दान्त गरीबी

में पले बढ़े थे, उजड़े लोगों से उनका वास्ता था। वह गरीबी विषयक साहित्य का प्रेमी बना। यहीं उसने इटली के जोसेफ मैजिनी और विश्वविख्यात दूसरे क्रान्तिकारियों तथा समाज सुधारकों का जीवन चरित्र पढ़ा। फ्रांसीसी और रूसी साहित्य से अनुप्रेरित अंग्रेजी साहित्य में ऐसी बहुत किताबें थीं। यहीं से उसके आर्थिक तथा राजनीतिक चिन्तन की प्रेरणा शुरू होती है। कालेज के पुस्तकालय में वह उनमें रमा रहता था। अंग्रेजी के अध्यापक उसके अंग्रेजी लेखों की सराहना करते थे। अंग्रेजी में उसे अव्वल अंक मिलते थे।

एफ० एस-सी० पास करते ही वह गांधी की चपेट में आ पड़ा। महात्मा जी ने सन् 1921 के खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन में अंग्रेजी पद्धति के स्कूल-कालेजों के बहिष्कार का आह्वान किया। चरण सिंह उस आह्वान पर कालेज की पढ़ाई छोड़ने को तैयार हो गया। परन्तु भविष्यद्रष्टा सहृद् डाक्टर भूपाल सिंह ने उसे कालेज नहीं छोड़ने दिया। मेरठ के प्रभावशाली कांग्रेसी पंडित प्यारे लाल शर्मा, जो बाद में उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री हुए, डाक्टर भूपाल सिंह के घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने भी समझाया कि पढ़-लिख कर और योग्य बन कर ही सार्थक देशसेवा की जा सकती है। परिवार के बुर्जुगों ने भी पढ़ाई न छोड़ने के लिए जोर दिया। उसकी अन्तर्प्रवृत्ति ने भी प्रेरणा दी। पढ़ाई नहीं छूटी। बी० एससी० पढ़ने के लिए युवक चरण सिंह आगरा कालेज लौट आया। देश के लिए, हमारे प्रदेश के लिए, डाक्टर भूपाल सिंह और पंडित प्यारे लाल शर्मा ने कितना बड़ा काम किया। डाक्टर भूपाल सिंह ने बी० एससी० में दस रुपये का वजीफा बीस रुपये महीना कर दिया।

बी० एससी० के दूसरे साल में चरण सिंह ने रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश पाने का इम्तहान दिया। तीस लड़के चुने जाने थे। वह परीक्षा में उन्तीसवें नम्बर पर आया। ड्राइंग में पचास प्रतिशत अंक पाना जरूरी था। ड्राइंग की उसने खास तैयारी नहीं की थी। अतः उसके स्थान पर चालीसवें नम्बर वाला विद्यार्थी चुना गया। जीवन की इस पहली असफलता से, साधारण ही सही, युवक चरण सिंह की अर्न्तमुखी प्रवृत्ति तथा मनन-शक्ति को और अधिक बल मिला। उसकी हर विषय की छोटी से छोटी बात की अवहेलना न कर उसके तह तक सांगोपांग पहुंचने की प्रवृत्ति बनी। चौधरी चरण सिंह आज भी जिस विषय पर लिखते या बोलते हैं, उसका गहराई से पूरा-पूरा विश्लेषण करते हैं, कोई भी, छोटा से छोटा पहलू छूटता नहीं। तद्विषयक आंकड़े उनकी उंगलियों पर सही-सही उभर आते हैं। जड़ की उन जैसी पकड़ देश के इने-गिने बौद्धिक विशेषज्ञों में भी कम होती है। उनकी यह शुभ प्रभावकारी प्रवृत्ति विद्यार्थी जीवन में ही उभरी। वह अध्ययनशील था, मनन करता था और तद्विषयक विचारों में खोया रहता था।

आगरा का ऐतिहासिक नगर उस पर प्रभाव न डालता यह तो सम्भव ही

नहीं था। ताजमहल—धरती के शुभ सरोवर में सफेद कमल सा खिले, प्रेम की इस अमर निशानी को देख कर उसका मन जाने किन-किन कल्पनाओं से भर आया होगा। उसने फतेहपुर सीकरी को देखा होगा। जहां हिन्दू-मुस्लिम एकता का कीर्तिस्तम्भ, महारानी जोधा बाई का महल और पूजा गृह, आज भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का मौन जयघोष करता है। डोले में लाकर भी अकबर ने जोधा बाई का धर्म अक्षुण्ण रखा। भरतपुर के महाराजा सूरजमल और उनके पूर्ववर्ती सरदारों, राजाओं के शौर्य की क्रीड़ास्थली को देखकर उसका जातीय पौरुष उफन आया होगा। अपने गोत्र के पुरुषों के वल्लभगढ़ किले की सरगर्मियां भी उसे बेहद याद आयी होंगी। राजा नाहर सिंह के उत्सर्ग को तो वह कभी भी अपनी आंखों से ओझल नहीं कर पाया होगा। आगरा की शिल्पकारी व घरेलू उद्योग-धन्धे अपनी मिसाल आप हैं। तरुण चरण सिंह के मन पर अंग्रेजों के आने के पहले की हिन्दुस्तान की ऐतिहासिक शिल्पकारी की याद आयी होगी, जिसकी सारी दुनिया में कहीं बराबरी नहीं थी और जिसे अंग्रेजों की कम्पनी ने पहले यूरोप के बाजारों में निर्यात कर धन कमाया और फिर शक्ति बढ़ जाने पर अपने स्वार्थ के लिए विनष्ट कर दिया। चरण सिंह ने गांवों की बेरोजगारी और गरीबी दूर करने के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ घरेलू उद्योग धन्धों को भी बढ़ावा देने की नीति का अपने जीवन भर प्रतिपादन किया है। यही महात्मा जी चाहते थे। उसे अपनी इस नीति के लिए जीवन भर संघर्ष करना पड़ा है। उस संघर्ष में उसे व्यक्तिगत रूप में नुकसान भी कम नहीं उठाना पड़ा। थक कर भी वह अपराजेय सा आज भी उन सिद्धान्तों का डंका पीट रहा है। उसकी नयी पुस्तक 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति—उसके कारण और निदान' इसका प्रमाण है। सैंतीस सालों में जो गरीबी अति आधुनिकतम पूंजीपरक उद्योगों से दूर नहीं हो पायी, वह कृषि उत्पादन की बढ़ोत्तरी और श्रमपरक लघु तथा घरेलू उद्योगों से जल्दी-से-जल्दी दूर हो सकती है—यही उसकी पुस्तक का प्रतिपाद्य है। उसका हिन्दू-मुस्लिम एकता का अनवरत प्रयत्न मेरठ के कारण ही नहीं माना जाएगा, आगरा की संस्कृति का भी उसमें बड़ा हाथ है।

आगरा कालेज के अन्तिम वर्षों में उसने संयुक्त प्रदेश की काउन्सिल के चुनावों की सरगर्मी को देखा होगा। मांन्टेगू चेम्सफोर्ड सुधारों ने वोटरों का क्षेत्र विस्तृत कर दिया था। लेकिन तब बड़े जमींदार और सामन्तों का ही बोलबाला था। इससे एक कुशल और कर्मठ किसान के बेटे की जो प्रतिक्रिया हुई होगी उसे अनुमान ही किया जा सकता है।

स्वदेश के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने की धुन में उसने बी० एससी० के बाद एम० एससी० में इतिहास पढ़ा। पढ़ना वह चाहता था अर्थशास्त्र। लखनऊ विश्वविद्यालय में तब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान डॉ० राधा कमल मुखर्जी अर्थशास्त्र के बिभागाध्यक्ष थे। वह एम० ए० में प्रवेश लेने के लिए लखनऊ गया। वहां लखनऊ के

स्नातकों को ही जगह मिलनी मुश्किल थी। अतः चौधरी चरण सिंह को आगरा लौटना पड़ा। उसने एम० ए० में इतिहास का विषय ही लिया। इतिहास से उसके पूर्वज जुड़े थे, उसे स्वयं इतिहास बनाना था, इसलिए इतिहास का अध्ययन उसके लिए जरूरी था।

राष्ट्रीय प्रेम से भी उसका हृदय लबालब भरा था। वह कालेज में महात्मा गांधी के 'यंग इण्डिया' का नियमित पाठक था। 'यंग इण्डिया' में उन्हीं दिनों गांधी जी ने छुआछूत मिटाने पर एक विचारोत्तेजक अग्रलेख निकाला। कालेज के विद्यार्थियों में उस लेख पर घोर विवाद हुआ। एक विद्यार्थी ने चरण सिंह से चुनौती के स्वर में भंगी का छुआ खाने को कहा। चरण सिंह ने भंगी से खाना बनवा कर उसे बड़े प्रेम से खाया। इसके लिए कई दिनों तक छात्रावास की रसोई के बर्तन में उसे खाना नहीं परसा गया, लेकिन साथी विद्यार्थी उसका लोहा मान गये।

एम० ए० के साथ-साथ उसने कानून भी पढ़ना शुरू किया। कानून के पहले वर्ष की परीक्षा के कुछ दिन पहले, उसके ताऊ लखपत सिंह जी की दिसम्बर सन् 1923 में मृत्यु हो जाने के कारण वह परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सका। इसलिए उसने एम० ए० के अन्तिम वर्ष के साथ कानून के प्रथम वर्ष की परीक्षा पास की।

एम० ए० के बाद वह मेरठ कालेज में कानून की पढ़ाई पूरी करने आया। कानून की परीक्षा उसने अव्वल श्रेणी में पास की। इस बार मेरठ में वह स्काउट आश्रम, नामक संस्था में रहा। पंडित तेजराम शर्मा उस आश्रम के सुपरिन्टेंडेन्ट थे। वह विद्यार्थियों से मित्रभाव का व्यवहार करते थे और उन्हें हमेशा सत्यपथ पर अडिग रह कर देश सेवा की प्रेरणा देते थे। स्काउट आश्रम से अंग्रेजी में एक पत्रिका निकलती थी। उसमें युवक चरण सिंह ने देश की तत्कालीन समस्याओं तथा स्वास्थ्य पर कई निबन्ध लिखे। उस पत्रिका की पुरानी प्रतियां बहुत कोशिश पर भी नहीं मिलीं। चौधरी चरण सिंह जी के जीवन के वे प्रारम्भिक लेख अप्राप्त से हैं। वे अगर मिल जायें तो चौधरी साहब की सार्वजनिक वृत्तियों के विकास की अनमोल कड़ी साबित होंगे।

मेरठ में कांग्रेस का संगठन सन् 1920-21 के पहले से ही हो चुका था। यद्यपि अभी वह शहरों के बुद्धिजीवियों तथा किसानों के युवकों तक ही सीमित था। सन् 1857 की क्रान्ति से मेरठ क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र बन गया था। पण्डित गौरी शंकर मेरठ षड्यंत्र केस में पकड़े गये थे। श्री विष्णु शरण जी दुबलिश को काकोरी केस में कालापानी की सजा हुई थी। सन् 1920 में पहले-पहल महात्मा गांधी मेरठ आये जिससे वहां राष्ट्रीय विचार धारा वाले व्यक्तियों के लिए लोक सेवा का वातावरण भी बन चुका था। काशी विद्यापीठ के सुप्रसिद्ध शास्त्रियों—सर्वश्री अलगू राय, हरिहर नाथ, राजा राम में से अग्रज श्री अलगू राय शास्त्री ने वहां 'कुमार आश्रम'

स्थापित किया था। शेर-ए-पंजाब लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित अखिल भारतीय लोक सेवा मंडल में प्रशिक्षण प्राप्त कर इन शास्त्रियों ने देश सेवा का ठोस रचनात्मक कदम उठाया था। कुमार आश्रम में हरिजन उत्थान तथा खादी के प्रचार का कार्य जोरशोर से चलाया जाता था। स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री भी बाद में इस आश्रम में काम करने आये। युवक चरण सिंह की बौद्धिकता का इन सबसे गहरा मंथन हुआ। उसका कुमार आश्रम से सम्बन्ध स्थापित हुआ। उसकी कार्य प्रणाली का उसने अध्ययन किया और उसके प्रचार-प्रसार में योगदान किया।

लाला लाजपत राय ने उत्तर पश्चिम भारत में आर्य समाज के प्रचार का भी ठोस काम किया था। महर्षि दयानंद जी के जीवन काल से ही आर्य समाज स्त्री शिक्षा, कुरीतियों तथा जाति-पांति का भेद मिटाने, वैदिक शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, देश की स्वतंत्रता, स्वभाषा और स्वभूषा के लिए निरन्तर संघर्षशील रहा है। श्री अलगू राय शास्त्री भी आर्य समाजी थे। उच्च शिक्षा ने युवक चरण सिंह को भी आर्य समाजी बना दिया था। मां-बाप सनातनधर्मी थे। लेकिन पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में आर्य समाज के व्यापक प्रचार के अलावा एक पुस्तक ने युवक चरण सिंह को कट्टर आर्य समाजी बनाया। वह पुस्तक स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा रचित आर्य समाज के संस्थापक की जीवनी थी—श्रीमद्दयानन्द प्रकाश। इसी श्रृंखला की दूसरी पुस्तक थी स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशी राम) की आत्मजीवनी 'कल्याण मार्ग का पथिक'। स्वामी श्रद्धानन्द जी के असाधारण साहसिक जीवन और विचारों का भी चरण सिंह पर गहरा प्रभाव पड़ा। खिलाफत के दिनों में दिल्ली की ऐतिहासिक जामा मसजिद में हजारों मुसलमानों की नमाज में स्वामी जी का भाषण ब्रिटिश शासन काल में हिन्दू मुसलिम एकता का अपूर्व स्वरूप था। धर्म में दृढ़ आस्था साम्प्रदायिकता कदापि नहीं। धर्म व्यक्ति के विकास की रीढ़ है। वह आदमी को इन्सान बनाता है, उसे ईश्वर की ओर अभिमुख कर बुराइयों से दूर हटाता है। युवक चरण सिंह ईश्वर के प्रति आस्थावान बना। वह भरी जवानी में सन्तों की तरह सहृदय था, सच्चरित्र था और हिन्दुस्तान के गरीब किसानों, मजदूरों, बहुसंख्यक शोषित जनसमूह के उत्थान की भावना से अभिभूत था।

एक प्रश्न के उत्तर में उसने बहुत बाद में अखबार वालों को बताया कि "गुजरात मेरे लिए पुण्य भूमि है। जहां तक सामाजिक और धार्मिक प्रभाव का ताल्लुक है, वह स्वामी दयानन्द का ही रहा, किन्तु राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों पर मैंने गांधी जी को ही अपना आदर्श माना है और उन्हीं की नीतियों और विचारों ने मुझे प्रभावित किया।" आज भी उसके अध्ययन कक्ष में महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द और सरदार पटेल के चित्र दर्शकों को अनिमेष दृष्टि से देखते हैं। उसके

निजी पुस्तकालय में वेदों से लेकर अति आधुनिकतम धर्म और राजनीति विषयक सद्ग्रंथ हैं।

शिक्षा समाप्त होते-होते उसे सन् 1925 में विवाह के पवित्र बन्धन में बंधना पड़ा। रोहतक जिले के गढ़ी कुण्डल गांव में एक कट्टर आर्य समाजी परिवार था। परिवार बड़ा धनी खेतिहर था, चार-पांच हल की उनकी खेती थी। ऊपर से लाखों का सालाना लेनदेन का काम था। इस परिवार से रिश्ता आया। उसकी भी एक रोचक कहानी है। मथुरा में सन् 1925 में बड़े धूमधाम से स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी मनायी गयी। समारोह में दूर-दूर से प्रतिनिधि आये, भारी संख्या में उसमें युवक भी शामिल हुए। आगरा से युवक चरण सिंह भी अपने मित्रों के साथ उस समारोह में पहुंचा। उधर रोहतक से गढ़ी कुण्डल का उपरोक्त परिवार भी आया था। इस परिवार की गायत्री नामक एक कन्या लाला मुंशी राम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा स्थापित जालन्धर कन्या महाविद्यालय में पढ़ी थी, उनकी शिक्षा मैट्रिक के बराबर की थी। तब इतनी शिक्षा युवतियों के लिए बड़ी भारी उपलब्धि थी। अब घर पर रह रही थीं। उनके पिता श्री गंगा राम जी का स्वर्गवास सन् 1918 में हो चुका था। वह अपने गांव की स्त्रियों और सहेलियों समेत अपने दादा के संग शताब्दी समारोह में आयी थी।

लोग कैम्पों में ठहरे थे। युवक चरण सिंह अपने तीन-चार मित्रों के साथ एक दिन गायत्री देवी के कैम्प की ओर से निकला। अपने कैम्प के पास ज़मीन को साफ-सुथरा कर, लीप पोत कर, ईंटों के चूल्हे पर गायत्री देवी रसोई चढ़ाये थी। चरण सिंह और उसके साथी रसोई की लक्ष्मण रेखा के ऊपर से अनजाने निकल पड़े। गायत्री देवी ने रोष से कहा—"जूता पहनकर रसोई में आ गये?" युवकों ने, चरण सिंह ने, अपनी गलती महसूस की। वह सिर झुकाये बिना कुछ कहे, औपचारिक माफी मांग कर अपने रास्ते चले गये। गायत्री देवी और चरणसिंह की यह पहली देखादेखी थी। तब दोनों में किसी को यह अनुमान नहीं था कि वे पवित्र परिणय में बंध कर एक दूसरे के जीवन-संगी बनेंगे।

गायत्री देवी के दादा ने अपने पड़ोस के गांव के एक लड़के से जो आगरा के मेडिकल स्कूल में पढ़ता था, गायत्री देवी के विवाह के लिए किसी योग्य लड़के को बताने के लिए कह रखा था। उस युवक ने चरण सिंह का नाम सुझाया। दादा भदौला आये, चरण सिंह को देखा भाला। दादा धनपति, बहुत ही बड़े सम्पन्न परिवार के अधिपति, चरण सिंह को भदौला में देखने के बाद जब गढ़ी कुण्डल लौटे तो अपने परिवार से उन्होंने बताया कि लड़के के मां-बाप का घर मिट्टी और छप्पर का है। वे गरीब हैं, मगर लड़का ऐसा होनहार है, जैसा हमारे समाज में दूसरा मुश्किल से मिलेगा। तब उनकी बिरादरी विशेष में उच्च शिक्षित लड़के कम मिलते थे। परिवार को उच्च

शिक्षित वर चाहिए था। अतः सोच-विचार के बाद उन्होंने अपनी पौत्री का रिश्ता उपरोक्त युवक के साथ कर दिया। लखपति घर की उस समय की उच्च शिक्षिता गायत्री देवी श्रीमती चरण सिंह बनकर एक गरीब किसान के घर में भदौला आयीं। उनकी मनोदशा का अनुमान करें जब विवाह की वेदी पर वर की जगह उन्होंने उसी लड़के को देखा होगा, जो जन्म शताब्दी समारोह में जूता पहने उनके चौके की लक्ष्मण रेखा लांघ गया था। उस घटना के ध्यान से वह लाज से गड़ गयी होंगी। मगर चरण सिंह और गायत्री देवी का विवाह फूला-फला। श्रीमती गायत्री देवी ने चरण सिंह के जीवन कर्मक्षेत्र में सती-साध्वी आर्य ललना-सा उनका पूरा-पूरा साथ दिया, घर और बाहर दोनों स्थानों पर। राष्ट्रीय आन्दोलनों में जब-जब वे जेल गये, बाद में आपातकालीन घोषणा में जब वे पकड़ कर बिना कोई अपराध बताये जेल में बन्द कर दिये गये, जब-जब कभी उन्हें यातनाएं और पीड़ा मिली या महसूस हुई, गायत्री देवी उनका और बच्चों का सहारा बनी रहीं। उन्होंने बड़े धीरज, सूझबूझ और साहस से हर पारिवारिक दायित्व को सम्भाला। वे चौधरी साहब का घर ही नहीं सम्भालती हैं—देश के पुनरुत्थान के उनके सार्वजनिक काम में भी पूरा-पूरा हाथ बंटाती हैं। चौधरी साहब के राजनैतिक जीवन के कई मोर्चों पर उनका प्रभाव परम शुभकारी रहा है। आगे के पृष्ठों में उसका उल्लेख मिलेगा। युगल दम्पति भारतीयता के प्रतीक हैं—सादा जीवन और ऊंचा विचार। कहीं कोई बनवाट नहीं। कहीं कोई प्रदर्शन नहीं, झूठा आडम्बर नहीं। उन्हें देखकर बरबस राष्ट्रपिता बापू और माता कस्तूरबा की याद सहज ही आ जाती है।। माता कस्तूरबा की महात्मा जी के साथ जो भूमिका रही, ठीक वही, श्रीमती गायत्री देवी की है। जाटों का दाम्पत्य प्रेम जातीय गुण है। इसकी पवित्रता पर वे भरसक आंच नहीं आने देते हैं। चौधरी साहब और श्रीमती गायत्री देवी का गृहस्थ जीवन आदर्श रहा है। जीवन के हर कठिन मोड़ पर वे एक दूसरे के अन्योन्याश्रित रहे हैं।

समरांगण : राष्ट्रीय कांग्रेस में
(1920 से 1939)

हर व्यक्ति का अपना जीवन ही उसका कुरुक्षेत्र और धर्मक्षेत्र होता है। अपनी मूल प्रवृत्तियों को पहचान कर समष्टि के हित में उनका केन्द्रीकरण ही सत्पथ पर बढ़ना है। यही स्वार्थ से परमार्थ और उसके ऊपर 'बहुजन हिताय' को समर्पित जीवन की सारभूत उपलब्धि-सफलता है। हमारे दर्शन के अनुसार मनुष्य का जीवन परम शक्ति की प्रतिच्छाया है। छाया का आलोक से एकीकरण ही मानव को मोक्ष माना गया है। सेवा का यही प्राप्य है। मनुष्य के जीवन का भी यही उद्देश्य है। यह सच है कि जीवन के महापंथ की चोटी पर पहुंच कर पाण्डवों की तरह सबको शून्य में विलीन हो जाना पड़ता है। सफल पुरुष किन्तु मर कर भी पाण्डवों की तरह अमर हो जाते हैं। चौधरी चरण सिंह भी उन महान पुरुषों में हैं जो अपने जीवन के सदियों बाद तक युगों को आलोकित करते रहेंगे।

कालेज की शिक्षा समाप्त कर गृहस्थाश्रम की पहली सीढ़ियों पर युवक चरण सिंह जैसे जीवन के चौराहे पर आ खड़ा हुआ। देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में अपना सर्वस्व अर्पित करने का उसका संकल्प दृढ़ था। लेकिन अभिभावकों ने जैसे कालेज की शिक्षा का बहिष्कार नहीं करने दिया, वैसे ही चरण सिंह के सामने एक नया अवरोध खड़ा कर दिया।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से ही, विशेष कर रूसी राज्य क्रांति के प्रभाव के कारण देश के बुद्धिजीवियों में स्वतंत्रता की ललक भड़क चुकी थी। क्रांतिकारी आन्दोलन पहले से कहीं अधिक सबल हो चला था। रौलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग की नृशंस हत्याओं और शासकीय दमन नीति के फलस्वरूप निहत्थी जनता को सत्य, अहिंसा द्वारा महात्मा गांधी के असहयोग के अमोघ अस्त्र में नया उल्लास मिला। हम बिलकुल निहत्थे नहीं, हमारे पास गांधी जी का दिया हुआ नैतिक बल है, जिसके सामने सामरिक अस्त्रशस्त्र बेमानी साबित होंगे, इस भाव से भारतीय नये उत्साह से स्वतंत्रता के लिए उत्तेजित हो उठे। इससे अंग्रेज बेहद घबराए। महात्मा गांधी ने तिलक के 'स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार' है को नयी व्यापक परिभाषा दी। तिलक अभी जीवित थे। छः साल की सजा काट कर माण्डले जेल से आ चुके थे। खिलाफत आन्दोलन के वे पक्ष में भी थे। लेकिन अब महात्मा गांधी का बोल-

वाला था। वे जन-मानस पर छाये जा रहे थे। गांधी जी ब्रिटिश शासन के अधीन ही स्वायत्तता की मांग के समर्थक थे। उन्होंने सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजाया। मुस्लिम जनमत तुर्की के खलीफा के विरुद्ध हुई सन्धि की शर्तों से अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हो गया था। तुर्की के मुसलमान तो नहीं, मगर हिन्दुस्तानी मुसलमान खलीफा के पद की गरिमा और विस्तार को बनाये रखने के पक्ष में थे। अली बन्धुओं के नेतृत्व में उन्होंने असहयोग आन्दोलन से खिलाफत को भी जोड़ा। इस तरह सन् 1921 का असहयोग आन्दोलन सन् 1857 की राज्य क्रांति के बाद का अपूर्व आन्दोलन बन गया। इसको दबाने के लिए अंग्रेजी सरकार ने अपना दमन चक्र बहुत तेज कर दिया। तीस हजार आन्दोलनकारी कैद किये गये। दमनचक्र के साथ ही अंग्रेजों का कूटनीतिक बाण भी चला। उन्होंने हिन्दुस्तानी जनता का मन जीतने के लिए प्रिन्स ऑफ वेल्स को भारत भेजा। अंग्रेज साफ ही जनमानस को ठीक-ठीक समझ नहीं पाते थे। प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत में हर जगह कल्पनातीत बहिष्कार हुआ। इससे अंग्रेज सरकार का धैर्य खो गया। सत्याग्रहियों पर कई झगह गोलियां चलीं। गांधी जी ने सत्याग्रहियों को कट्टर अहिंसावादी रहने की सीख दी थी। अधिकांश अहिंसावादी रहे भी। लेकिन गोरखपुर जिले में सत्याग्रहियों की भीड़ ने गोलियां खाते हुए भी क्रुद्ध होकर चौरा-चौरी थाने को जला दिया। बारह पुलिस वाले मारे गये। महात्मा गांधी ने इससे दुःखी हो आन्दोलन को स्थगित कर दिया और पश्चात्ताप प्रकट करने के लिए अनशन किया। अंग्रेजी शासन पर इसकी यह प्रतिक्रिया हुई कि उनका दमनचक्र पहले से कहीं तेज हो गया। गांधी टोपी देखते ही सरकार का सिर चकरा जाता। अन्ततः अंग्रेजों ने गांधी जी को भी गिरफ्तार कर राजद्रोह में छः साल की कैद की सजा दे दी।

युवक चरण सिंह महात्मा जी के आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुआ। अंग्रेजों के दमनचक्र के खिलाफ उसका गरम खून खौलने लगा। लेकिन अभावों से ग्रस्त अभिभावकों ने उसे सिविल सर्विस का इम्तहान देने को विवश किया। ताऊ चौधरी लखपत सिंह उसे बहुत प्यार करते थे। उनकी बात वह चाह कर भी अमान्य नहीं कर सका। उसने प्रान्तीय सिविल सर्विस की डिप्टी कलेक्टर और मुन्सिफ पदों की परीक्षा दी। दोनों की लिखित परीक्षाओं में वह सफल भी हुआ। उन दिनों अंग्रेज़ राजभक्त तथा सामन्ती परिवारों से बहुत ठोंक बजा कर हिन्दुस्तानियों को उच्च पदों पर नियुक्त करते थे। इसलिए साक्षात्कार की मौखिक परीक्षा में वह उत्तीर्ण नहीं हो सका। युवक चरण सिंह को सिविल सर्विस में न आना था और न ही वह आया। यह ऐसा ही शुभ संयोग माना जाएगा जैसा स्वर्गीय पण्डित जवाहर लाल नेहरू का इग्लैंड में आई० सी० एस० में न आना। अंग्रेजों की सिविल सर्विस में पण्डित जवाहर लाल भी कभी उभर नहीं पाते। श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, महर्षि अरविन्द घोष, श्री सुभाष चन्द्र बोस

आदि कितने ही यशस्वी देश सेवक स्वदेश की अभूतपूर्व सेवा भी तभी कर सके, जब उन्होंने अंग्रेजों की सिविल सर्विस को ठुकराया या उससे अलग हुए। श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी, बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, एकमात्र अपवाद हैं, जिन्होंने अंग्रेजों के बंगाल की सिविल सर्विस में रह कर भी देश की महान सेवा की। वे साहित्य शिल्पी थे। चौधरी चरण सिंह को युगान्तकारी काम करना था। उनके लिए भावी की दूसरी योजना थी। सिविल सर्विस में न आकर उन्हें देश तथा समाज की सेवा का विस्तृत क्षेत्र अनायास मिल गया।

उस समय—तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में—बेरोजगारी के साथ-साथ मन्दी का भी प्रकोप असह्य रूप से बढ़ गया था। अनाजों के भाव 50 प्रतिशत गिर गये थे। किसानों की यह दशा थी कि वे मालगुजारी अदा करने में भी असमर्थ थे। अतः जीविका चलाने के लिए ईमानदार आदमी को कोई न कोई काम करना बहुत जरूरी था। महात्मा जी के अनुयायियों में तब ईमानदारी और नैतिकता सर्वोच्च चारित्रिक गुण थे। आज की तरह असामाजिक और अवांछनीय तत्त्वों के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश की गुंजाइश नहीं थी। असहयोग आन्दोलन में गांधी जी ने कचहरियों और वकालत के बहिष्कार पर भी जोर दिया था। चौरा-चौरी काण्ड के बाद आन्दोलन के स्थगित हो जाने से अब वकालत करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रह गया था। अतः चौधरी साहब ने सन् 1927 में वकालत का काम शुरू किया। वकालत का पेशा भी —चांदी की घुड़दौड़ में—आज जैसा निम्न स्तर का नहीं हो गया था। अनेकानेक वकील राजधानियों, जिलों, तहसीलों में स्वतंत्रता संग्राम के पेशवा थे। चौधरी चरण सिंह सन् 1928 में वकालत करने के लिए गाजियाबाद आये। वकील बनने के पहले एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख यहां जरूरी है।

बड़ौत, जिला मेरठ, के उस समय के जाट हाई स्कूल और बाद के सुप्रसिद्ध कालेज ने उन्हें अपना द्वितीय हेडमास्टर बनने के लिए आमंत्रित किया। यह चौधरी साहब की निजी बौद्धिकता, अध्ययनशीलता तथा तत्कालीन विचारों के सर्वथा अनुरूप भी था। किन्तु उस पद को स्वीकारने में एक अड़चन थी। कालेज की शिक्षा के दिनों से ही चौधरी साहब जाति-पांति के कट्टर विरोधी बन चुके थे। उन्होंने इतिहास पढ़ा था। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि जाति-पांति की प्रथा के कारण ही हिन्दुस्तान के इतिहास में एकता का अभाव रहा और देश अनेक राज्यों में विभाजित रहा। इसीलिए विदेशी आक्रमणकारी सुगमता से हिन्दुस्तान में घुस आया करते थे। जाति प्रथा के कारण ही हिन्दुस्तान में राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना कभी पनप नहीं पायी। उत्तरी-पश्चिमी पहाड़ी दर्रों से आक्रमणकारियों के आने की बात अब इतिहास की एक कड़ी बन चुकी है; और समुद्री रास्ते से मुट्ठी भर अंग्रेज व्यापारी आकर हमारी राष्ट्रीय एकता के अभाव में छल-छन्दों और धोखाधड़ी से हमारे ऊपर राज्य

कर गये। हिन्दुस्तान के इतिहास के हर पन्ने पर हमारी एकता और राष्ट्रीयता के अभाव का प्रमाण मिलेगा। अत: जाति-पांति का घोर विरोधी होने के कारण चौधरी साहब ने जाट स्कूल के व्यवस्थापकों को जवाब में लिखा कि अगर वे अपने स्कूल के नाम से 'जाट' शब्द हटा लें, तो उनका आमन्त्रण स्वीकार कर पायेंगे। कुछ दिनों बाद लखावटी के जाट डिग्री कालेज ने भी उन्हें अपना प्रिंसिपल बनाने का आग्रह किया। तब प्रिंसिपल का पद बहुत प्रतिष्ठा का माना जाता था और उसका वेतनमान भी ऊंचा था। लेकिन 'जाट' शब्द के कारण चौधरी साहब ने उसे भी अस्वीकार कर दिया। साधारणतया उन जैसी आर्थिक दुरूहता का कोई भी शिक्षित युवक उन पदों को दौड़ कर स्वीकार कर लेता। चौधरी चरण सिंह ने अपने चारित्रिक विकास में सिद्धान्तों से समझौता करना सीखा ही नहीं था। उनकी प्रारम्भ से ही यही जीवनधारा रही है। सच तो यह है कि यह सिद्धांत उनका व्यक्तित्व बन गया है। उनके कुछ अनुदार छिद्रान्वेषियों ने उन पर जातिवादी होने का निर्मूल आरोप लगाकर अपना ही दीदा खोया है। झूठे आरोप हवा की तरह उड़ जाते हैं, टिकते नहीं।

चौधरी साहब, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, आर्य समाजी हैं। लेकिन वे साम्प्रदायिक कतई नहीं। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फर खां, रफी अहमद किदवई आदि अपने धर्म इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे। क्या वे साम्प्रदायिक थे? चौधरी चरण सिंह कट्टर आस्तिक हैं। धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र में धर्म व्यक्ति की निजी मर्यादा है। उसकी सुरक्षा और उसके पालन की सबको पूरी स्वतंत्रता रहती है। बहुधर्मावलम्बी देश में राज्य प्रत्येक व्यक्ति की पूजा और संस्कार की सुरक्षा का उत्तरदायी होता है। धर्म निरपेक्षता घर से बाहर सारे नागरिकों को आर्थिक तथा राजनैतिक वर्गों में विभाजित करती है। राष्ट्रीय जीवन में व्यक्ति धर्म का नहीं प्रत्युत राष्ट्र का होता है। वह धनी, मध्यम श्रेणी या गरीब श्रेणी का हो सकता है। यही धर्म-निरपेक्षता समाज की विशिष्टता है। हमारे यहां कतिपय राजनैतिक दल अपने वोट के लिए बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक आदि को विदेशी अंग्रेजी शासन की तरह इस्तेमाल करते हैं। इसलिए ईर्ष्यालु विरोधियों ने चौधरी साहब को आर्य समाजी बताकर उन्हें मुस्लिम हितों का विरोधी बताया है। कांग्रेस छोड़ने के बाद ही उनके विरुद्ध यह प्रचार शुरू हुआ। मुस्लिम जनता अब तक इस धोखे में न आई है और न आशा है कभी आएगी, वह सच्चाई जानती है। वह उन पर पूरा विश्वास रखती है। अधिकतर मुसलमान पिछड़ी आर्थिक स्थिति के लोग हैं। वे प्राय: दस्तकारी और शिल्पकारी के छोटे धन्धों में लगे हैं। सहज ही वे अपना दु:ख-दर्द सुनाने को बड़ी भारी संख्या में उनके पास आते हैं। वह अच्छी तरह जानते हैं कि घरेलू उद्योग धंधों के विकास पर ही उनकी खुश-हाली निर्भर है। उनके सबसे बड़े हिमायती गांधीवादी चौधरी साहब ही हो सकते हैं, जो श्रम-पूरक घरेलू उद्योग धंधों को देश के विकास के लिए अत्यावश्यक मानते हैं।

धर्मनिरपेक्ष राज्य में मुसलमानों को उनसे कोई शिकायत हो ही नहीं सकती। पारसी इतने अल्पमत में होते हुए भी अगर इस देश में अपनी विशिष्टता रख सकते हैं, तो मुसलमान क्यों नहीं, जो यहीं की उपज हैं? पिछड़े वर्गों के, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, बीच से चौधरी साहब उभरे हैं और उन्हीं के लिए अब भी संघर्षरत हैं। आज तो सभी राजनैतिक दल अपने-अपने व्याख्यानों में पिछड़े वर्गों की दुहाई देते हैं। आज तो विभिन्न नेताओं के नाम से सम्बन्धित कांग्रेस वाले भी जो बापू के सिद्धांतों को प्रायः भूल चुके थे, इस होड़ में लगे हैं। उनकी नीति जाति, धर्म और साम्प्रदायिकता को बनाये रखना है। जिससे उनका 'वोट बैंक' सुरक्षित रह सके। चौधरी साहब देश के भविष्य को दृष्टि में रखकर नीति निर्धारण करते हैं। उनकी नीतियां ऐसी नहीं कि मुट्ठी भर पूंजीपति घोर अनैतिकता से देश को बड़ी तेजी से रसातल की ओर ले जा सकें। आज गांवों के गरीबों और शोषितों की दशा जैसी थी, वैसी ही है। स्वास्थ्यकर भोजन की बात ही दूर, गांवों में, झुग्गियों में पीने के साफ पानी की भी अभी तक कोई व्यवस्था नहीं हो पाई। शिक्षा, विज्ञान और टेकनालोजी के इतने विकास के बाद भी गांवों की पचास प्रतिशत से अधिक आबादी अब भी गरीबी रेखा के नीचे रह रही है। इसमें पन्द्रह प्रतिशत घोर दारिद्रय का कष्ट भोग रहा है। मुसलमानों का भी अनुपात इसमें कम नहीं। ऐसे लोग चौधरी साहब को मुस्लिम हितों का विरोधी बता कर किसकी आंख में धूल झोंकना चाहते हैं?

तो चौधरी साहब ने गाजियाबाद में वकालत शुरू की। वे दीवानी के वकील बने। फौजदारी के छल-छन्दों से न वे परिचित थे, न ही उसे पसन्द करते हैं, वे मेहनत करते थे, तेज दिमाग के थे और उनमें तर्क करने और प्रभाव डालने की शक्ति थी। उनकी वकालत चल निकली। बहुत ही जल्दी वे गाजियाबाद के दीवानी के तीन-चार अव्वल वकीलों में गिने जाने लगे।

वे जिस मुकदमे को स्वीकार करते थे, उसे पूरी तरह तैयार करते थे। फीस उन्हें अच्छी मिलती थी। वैसे फीस की उन्हें बहुत परवाह नहीं थी। कोई गरीब या पीड़ित उन्हें फीस न भी दे सके, कोई बात नहीं। मुकदमों में वे भरसक समझौता कराने की कोशिश करते थे—पंचायत की उनकी जातीय प्रवृत्ति थी। वे दुःखी तब होते थे, जब अदालत न्याय नहीं करती थी। उनके अनुभव में ऐसी अदालतें आयीं, जो बाहरी कारणों से प्रभावित होकर न्याय के सिद्धांतों को ताक पर धर देती थीं। फिर भी वकालत में वे मनोयोग से जुटे। उन्हें अपने बौद्धिक विकास का अनुकूल क्षेत्र मिला। उसके लिए उनमें उत्साह था, उनकी नजीरों के रेफरेन्स रजिस्टर को कभी-कभी वरिष्ठ वकील भी देखना चाहते थे और उनसे सलाह भी लिया करते थे।

उनकी आमदनी उस समय के अनुसार वकालत के शुरू से ही पर्याप्त होने लगी, करीब अस्सी पचासी रुपये महीना। रुपया जोड़ने का उन्हें मोह था नहीं। वह

महात्मा जी की तरह दरिद्र नारायण के प्रेमी थे। सादा रहना, ऊंचा विचार, हमेशा उनका बना रहा है। चांदी की चाट इन्सान को गला देती है। वह हाथ को ही नहीं, मन को भी मैला कर देती है। जीवन भर, आज तक, चौधरी चरण सिंह ने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया। जब शुरू-शुरू में कांग्रेस के आन्दोलनों में वे जेल गये, तो परिवार का खर्च चलाने के लिए साइकिल, घड़ी और पत्नी के पास एक ही आभूषण था वह भी बेचने पड़े। बाद में जब कुछ बचत होने लगी, खेती से भी आमदनी हुई, तब पिता चौधरी मीर सिंह मुखिया ने चौधरी साहब के बाद के एक समृद्ध मित्र के पास अमानत के तौर पर अपनी वर्षों की कमाई कुछेक हजार रुपये रखे। वह रुपया आज तक नहीं लौटा। चौधरी साहब ने उस बारे में मित्र से आज तक अपनी जबान नहीं हिलाई। अपरिग्रह का अपना सुख होता है। वर्षों बाद जब मैं प्रशासकीय सेवा में मेरठ में तैनात था, मुझे चौधरी साहब की सरकारी गाड़ी में बैठ कर देहाती क्षेत्रों के दौरे पर उनके संग जाने का सुअवसर मिला। तब वह उत्तर प्रदेश की कांग्रेसी सरकार के मन्त्री थे। गाड़ी में जिले के दूसरे नेता भी थे। चौधरी साहब दिन भर की व्यस्तता से थके-मादे थे। अचानक, अपनी थकावट दूर करने के लिए, वे उन्मुक्त कंठ से गा उठे :

"माया नाय रही रे काही के
यहां ना अमर रहयो कोई,
रावण बढ़ गयो गढ़ लंका में,
सोने की लंका छनक खोयी।
अरे, तेरे महल बने माटी के,
बाकी सोने की रे गढ़ लंका,
सर बजे रे, काल का डंका,
... ...

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में प्रचलित होली के बोल, भारत के ऋषि मुनियों और संतों का जीवन दर्शन ! चौधरी साहब को यह छोटी सी घटना तो क्या याद होगी, और इसका तो उन्हें तब बिलकुल आभास नहीं था कि मुझे लिखने-पढ़ने का भी शौक है। लेकिन आज यह सर्वविदित है कि उस माटी के महल वाले तपस्वी ने सोने का महल बनाने की कभी सपने में भी कामना नहीं की। यदि वह साधारण वर्ग का कांग्रेसी होता तो यह कोई मुश्किल बात नहीं थी। उसके उच्च पदस्थ साथियों ने क्या नहीं बनाया ? उन्होंने अपनी नैतिकता और ईमानदारी का ढोल भी जोर-जोर से पीटा, लेकिन सबको सदा धोखे में रखा नहीं जा सकता।

अपनी बचत के धन से, थोड़ी बहुत बचत वकालत से होने लगी थी, चौधरी

साहब ने कितने अभावग्रस्त लोगों, सहयोगियों और मित्रों की मदद की। आज भी सुविधानुसार ऐसा करने में वे हिचकते नहीं। वे और उनकी पत्नी दोनों एम० एल० ए० और एम० पी० रहे हैं। दोनों अपने मासिक पारिश्रमिक से ही अपनी गुजर बसर कर लेते हैं। वे अपने दल के अखिल भारतीय अध्यक्ष हैं। किसानों गरीबों से प्राप्त पार्टी का फण्ड भी है। वे अपने दल के फण्ड से दल के अभावग्रस्त सदस्यों की यथासम्भव मदद कमेटी द्वारा करा देते हैं। उनके इशारे पर उनके कुछ किसान मित्र भी अभावग्रस्त सार्वजनिक कार्यकर्ताओं, विधवाओं और गरीब विद्यार्थियों की मदद किया करते हैं। इसे वे मन से पसन्द नहीं करते हैं, क्योंकि समस्या का यह निदान नहीं। वह तो हर बालिग को रोजगार देने तथा आर्थिक असमानता मिटाने से ही सम्भव है। इस पर आगे के परिच्छेदों में···

गाजियाबाद में वकालत के स्वतंत्र पेशे में, अपनी भावनाओं और विचारों को उन्होंने मूर्तरूप देना प्रारम्भ किया। सन् 1929 में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास हुआ। एक साल पहले ही नेहरू (पंडित मोती लाल जी) कमेटी की रिपोर्ट औपनिवेशक स्वराज से सन्तुष्ट थी। पंडित जवाहर लाल नेहरू और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस में गरम दल के प्रतिमान थे। कांग्रेस का नया तिरंगा झंडा बना और 26 जनवरी सन् 1930 को पहला स्वतंत्रता दिवस देश भर में बड़ी गरिमा से मनाया गया। चौधरी साहब ने 1929 में गाजियाबाद में पहली कांग्रेसी कमेटी की स्थापना की। दिल्ली के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री गोपीनाथ जी अमन तब गाजियाबाद में मुख्तार थे। दोनों नयागंज में एक ही मकान में रहते थे। उन्होंने उनका हाथ बंटाया। दूसरे सहयोगी थे गांधी आश्रम के पंडित देव मित्र और एक पंडित मुन्नी लाल स्वामी। स्वामी जी बाद में संन्यासी हो गये। गाजियाबाद दिल्ली की नाक के नीचे है। दिल्ली में वाइसराय रहते थे, लेकिन गरीबी से जूझने वाले युवक वकील चौधरी चरण सिंह ने खूब शान से वहां तिरंगा लहराया, न वाइसराय का भय, न सामन्ती प्रतिक्रियावादियों से क्षोभ। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रवाह में जीवन धारा बह निकली।

उसी साल वे गाजियाबाद के आर्य समाज के सभापति चुने गये। आर्य समाज ने वेदध्वनि को दुबारा गुंजित किया था। उस ध्वनि में भारत की आजादी की मांग के स्वर भरे थे। इस तरह कांग्रेस से जहां उन्होंने स्वतंत्रता के महायज्ञ में अपनी आहुति देना प्रारम्भ किया, वहां आर्य समाज के जरिये वे सामाजिक कुरीतियों को मिटाने का रचनात्मक काम भी करने लगे। पहला ही मोर्चा एक अधिकारी से ठना। नगरपालिका के एक कार्यकारी अधिकारी थे। उन्होंने एक तरुणी विधवा को फुसलाया, उसका शील हरा। उस विधवा की अज्ञात यौवना कन्या पर भी अधिकारी महोदय ने डोरे डालना शुरू किया। वे उस कन्या को बहला-फुसला कर दिल्ली घुमाने ले गये। दिल्ली के स्टेशन के पास किसी होटल में उसे उन्होंने अपने साथ ठहराया

और उसके साथ बलात्कार किया। चौधरी साहब को खबर लगी। वे पीछे पड़े। कार्यकारी महोदय कन्या को होटल में अकेले छोड़कर फरार हो गये। चौधरी साहब ने उस कन्या का उद्धार किया। बहुत समझा-बुझा कर उसका विवाह उसी की जाति के एक उदार अध्यापक से करा दिया। विधवा मां की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी बहुत दिनों तक वे सम्हाले रहे। बाद में वह दिल्ली जा बसी।

उक्त कार्यकारी अधिकारी ने चौधरी साहब को कत्ल की धमकी भी दिलायी। यह उनके जीवन में कत्ल की पहली धमकी थी। इसका उन पर राई भर भी असर नहीं पड़ा। उल्टे गाजियाबाद में उनकी सेवा भावना की बड़ी प्रशंसा हुई। उन्हें स्वयं को बड़ा संतोष मिला। इस घटना की उन्हें आज भी याद है। बाद में आर्य समाज के पेशवा के नाते गाजियाबाद में उन्होंने इस दिशा में अनेकों काम किये।

दूसरी घटना जो उन्हें याद है वह गाजियाबाद के पास के गांव मकनपुर की है। उस गांव के एक गरीब बाप ने अपनी किशोरी कन्या का विवाह रुपये ले दे कर रईस पुर गांव के एक बूढ़े दूकानदार से तय किया। सूचना पाते ही ऐन विवाह के दिन चौधरी साहब मकनपुर पहुंचे। उन्होंने कन्या के बाप को समझाया। उसने समझा भी। वह रुपये ले चुका था, उन्हें खर्च कर चुका था। उसने कहा कि बूढ़े को रुपये भर दिए जायें। चौधरी साहब उतने रुपये का फौरन प्रबन्ध नहीं कर सके। गरीब बाप चाहते हुए भी बूढ़े से कन्या का विवाह नहीं रोक सका। चौधरी साहब को इसका आज तक दिली दुःख है। इस घटना के जिक्र से वे भर आते हैं। गरीबी कितना बड़ा अभिशाप है, इसे चौधरी साहब ने गाजियाबाद में आर्य समाज के प्रधान के रूप में बहुत निकट से देखा। गुलामी से मुक्त हुए बिना गरीबी कभी नहीं मिटेगी, यह उन्होंने अच्छी तरह समझा। गाजियाबाद में पास पड़ोस के गांवों में और मुकदमों में उन्होंने गरीबी की लाचारी का स्वयं अनुभव किया। आज आजादी के सैंतीस साल बाद भी गरीबी और अभाव कहां मिट पाये, अभिशाप कहां मिटे ? उल्टे बढ़ते ही गये। गांधी जी का सपना, आर्थिक स्वतंत्रता, कहां पूरा हुआ ? आज भी रुपये के लिए सब कुछ यहां तक कि पूर्वजों का धर्म भी बिक रहा है। चौधरी साहब इससे मर्माहत हैं। उनकी दिशा अस्सी प्रतिशत गरीबों को सुखी और समृद्ध बनाने की है—उनकी दारुण गरीबी को मिटाने की है, केवल नारों से नहीं, सच्चाई से। गांवों का बहुमत ही भारत की शक्ति है। भारत उसी की समृद्धि से शक्तिशाली होगा।

हिन्दी के लिए भी चौधरी चरण सिंह गाजियाबाद में नुकसान उठाकर लड़े। देश भर की एक भाषा, चाहे वह सम्पर्क भाषा ही हो, राष्ट्रीयता के लिए बहुत जरूरी है। तब कचहरियों और पढ़े लिखे लोगों में अंग्रेजी का बोलबाला था। पेशकारों, अहलकारों में फारसी लिपि में उर्दू चलती थी। अंग्रेजी हमारे विदेशी शासक अंग्रेजों की भाषा थी। आज भी देश भर में दो प्रतिशत से अधिक लोग इसे नहीं जानते।

यह हमारा घोर दुर्भाग्य है कि गुलामी की प्रतीक अंग्रेजी अब भी सरकार और समाज में भी धड़ल्ले से चल रही है। अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती। यह स्थान इतिहास के हर काल से गंगा यमुना के बीच में बोली जाने वाली भाषा का रहा है। हिन्दी ही आज वह भाषा हो सकती है। चौधरी साहब ने एक मुन्सिफ की अदालत में हिन्दी में अर्ज़ी दावा पेश किया। उसने उसे वापस लेने को कहा। चौधरी साहब ने वापस नहीं लिया। मुंसिफ हिन्दुस्तानी था। उसकी मातृभाषा हिन्दी थी। लेकिन वह चिढ़ गया। गुलामी के दिन, हिन्दी से उसे अपमान का बोध हुआ। उसने इस आधार पर कि अदालती कामकाज की भाषा अंग्रेजी है, चौधरी साहब द्वारा प्रस्तुत अर्ज़ी दावा खारिज कर दिया। चौधरी साहब डट गये। महामना मालवीय के मेमोरेंडम पर पारित शासन के आदेशों को उन्होंने ढूंढ़ निकाला, उनका हवाला दिया। मुंसिफ तब भी नहीं माना। उल्टे यह हुआ कि उसने चौधरी साहब के मुकदमों को खारिज करना शुरू कर दिया। चौधरी साहब ने उसके इजलास का मुकदमा लेना बन्द कर दिया। इससे उन्हें आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। वे झुके नहीं। शेष दो मुंसिफों की अदालतों में उन्होंने हिन्दी में ही काम किया।

अपने मंत्रित्व और मुख्य मंत्रित्व काल में उन्होंने सरकारी कामकाज में हिन्दी का उपयोग शतप्रतिशत कर दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कड़े आदेश पारित किए और उनका अनुपालन कराया। आज भी हिन्दी की, जिसमें उर्दू भी शामिल है, प्रतिष्ठा के बारे में उनकी एक विचारधारा है। उत्तर भारत की भाषा हमेशा सारे भारत की राजकीय और सम्पर्क भाषा रही है। आज के कतिपय राज्यों में इस बारे में विश्रृंखलता इसलिए है कि पिछले पैंतीस वर्षों में हम सारे देश को एक भाषासूत्र में नहीं पिरो सके हैं। वह तत्काल करना जरूरी है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 36वां अधिवेशन 9 दिसम्बर सन् 1948 को मेरठ में सम्पन्न हुआ था। चौधरी साहब उस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे। अपने भाषण में भाषा सम्बन्धी अपनी नीति को उन्होंने यों प्रकट किया था—"राष्ट्र भाषा का स्थान उसी को दिया जा सकता है, जिसकी शब्दावली, उच्चारण, लिपि और वर्णमाला अन्य प्रान्तीय भाषाओं की शब्दावली आदि के अधिक से अधिक निकट हो, जिसकी लिपि सुगम और वैज्ञानिक हो और जिसमें ऊंचे से ऊंचे साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे जा सकें। इन कसौटियों पर कस कर देखा जाय तो राष्ट्रभाषा पद पर केवल हिन्दी को ही आसीन किया जा सकता है।" एक भाषा से ही देश में एकता आयेगी, राष्ट्रीयता पनपेगी। अगर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने आज़ादी के प्रारम्भ से ही संविधान में पारित राष्ट्रभाषा का प्रस्ताव लागू कर दिया होता तो आज भाषा को लेकर कतिपय राजनैतिक क्षेत्रों में जो वितण्डा पैदा हो गया है; वह नहीं होता, यह उनका दृढ़ मत है। महात्मा गांधी की तरह वे भी बोलचाल की सरल हिन्दी के पक्षपाती हैं। वही मूल उर्दू भी है। मेरठ

के निवासी होने के कारण हिन्दी-उर्दू से उन्हें अगाध प्रेम है। दिल्ली के बाजारों या छावनी में मेरठ की बोलचाल की भाषा का ही विकास हुआ, जिसे बाहर से आये मुसलमान शासकों ने उर्दू अथवा बाजार की भाषा कहा। शहरों और दरबारों का प्रश्रय पाकर वह बोली सहज, सरस और सजीव बन गयी। हिन्दी और उर्दू में केवल लिपि का भेद है जिसका आसान हल ढूंढ़ा जा सकता है। राष्ट्रभाषा के सम्पर्क स्तर पर नागरी लिपि ही सारे भारत में चल पायेगी। धार्मिक ग्रन्थों आदि को पढ़ने के लिए फारसी लिपि को जानने की भी जरूरत है। उसका एकदम बहिष्कार नहीं किया जा सकता। अपभ्रंश से निकली सारे उत्तर भारत की भाषायें नागरी लिपि में ही लिखी जाती हैं। संस्कृत की लिपि भी नागरी है। इस तरह दक्षिण की भाषाओं में भी जिनके 40 से 70 प्रतिशत शब्द संस्कृत-जनित हैं, नागरी प्रचलित की जा सकती है। समूचे हिन्दुस्तान को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए नागरी लिपि में हिन्दी या उर्दू भाषा का कोई विकल्प नहीं है।

कांग्रेस के संयोजक की हैसियत से चौधरी चरण सिंह ने गाजियाबाद के देहाती क्षेत्रों का विधिवत दौरा किया। उन दिनों विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और खद्दर के प्रचार के कार्यक्रम पर जोर था। उनके दौरों का उद्देश्य गांवों में खद्दर का अधिकाधिक प्रचार करना था। अपने गांव भदौला में उन्होंने एक बड़ा जलसा आयोजित कराया, जिसमें मेरठ के कुमार आश्रम से श्री अलगू राय शास्त्री तथा उनके सहयोगियों ने भाग लिया। इन दौरों में अपने नूरपुर व जानी-खुर्द गांवों जैसी दुर्दान्त गरीबी और उनके अभावपूर्ण जीवन स्तर को उन्होंने सर्वत्र ही देखा। "यंग इण्डिया" में प्रकाशित महात्मा गांधी के दौरों के विवरण से भी उन्होंने अनुभव किया कि समूचे भारत को ब्रिटिश हुकूमत ने जानबूझ कर गरीब बना रखा है। यह शोषण का निकृष्टतम अमानुषिक तरीका है। इसमें शोषित अपने तन-पेट को साथ रखने के लिए शासकों की कृपा निहारता रहता है। आजादी के बिना इस गरीबी से जनसमुदाय का उद्धार कैसे सम्भव हो? उनका गरीबी के खिलाफ संघर्ष करने का निश्चय दृढ़तर हो गया। हिन्दुस्तान की गांवों में रहने वाली जनता की गरीबी कृषि उत्पादन बढ़ाने और घरेलू उद्योग धंधों के विकास से ही मिटेगी—यह उनका दृढ़ विश्वास बन गया। रास्ता अब सीधा और साफ था। वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्पूर्ण समर्पण से कूद पड़े।

सन् 1930 में गांधी जी का नमक कानून के खिलाफ देश-व्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हुआ। 5 अप्रैल को महात्मा गांधी ने डांडी में नमक कानून तोड़ा। देश भर में आन्दोलन बड़ी तेजी से फैला। सीमा प्रान्त में जहां खान अब्दुल गफ्फार खां के खुदाई खिदमतगारों ने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया, अंग्रेजों ने फौजी शासन लागू कर दिया। निहत्थी और शान्त भीड़ पर तोपें और बन्दूकें चलीं। इन्हीं में गढ़वाल राइफलस के बहादुर सैनिकों ने गोली चलाने के हुक्म को मानने से इन्कार

कर दिया। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और कोर्ट-मार्शल द्वारा आजीवन उम्र कैद की सजा दी गई। वे सन् 1937 में कांग्रेस मंत्रिमंडलों की जोरदार सिफारिश पर छोड़े गये। पहले विश्वयुद्ध के बाद सैनिक जागरण का यह महत्त्वपूर्ण उदाहरण था। महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में स्वतन्त्रता संघर्ष के लिए सेना का चकाचौंध करने वाला पहला योगदान था।

गाजियाबाद में गांधी जी के आन्दोलन को सफल बनाने का बीड़ा चौधरी साहब ने उठाया। गाजियाबाद के परगना मजिस्ट्रेट थे श्री श्याम सिंह पाठक। वे चौधरी साहब की प्रतिभा के परम प्रशंसक थे। उन्होंने उनके पिता को जो चौधरी साहब के खिलाफ मुकदमे की सुनवाई के समय पर उनकी अदालत में मौजूद थे, मित्र के रूप में समझाया कि ऐसे प्रतिभाशाली पुत्र को वे आन्दोलन में न पड़ने दें, क्योंकि वकालत चौपट हो जायेगी। पिता ने जवाब में कहा—"अब वे बड़े हो गये हैं। जो कर रहे हैं—ठीक ही है।" पिता की भविष्यवाणी कालक्रम से सही साबित हुई। परिवार के दूसरे लोग भी चौंके थे। परिवार उनसे गरीबी से उभरने की आशा लगाये बैठा था। दूरदर्शी पिता ने परिवार वर्ग को संभाला। अब क्या था ? नमक कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें छः महीने की सजा मिली। यह उनकी पहली जेल यात्रा थी, जिसका सिलसिला आपातकाल तक जारी रहा। वे निर्भीक हैं, सिद्धान्तों पर अटल रहते हैं, व्यक्ति और समूह की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता को प्रजातंत्र की रीढ़ मानते हैं। शुद्ध गान्धीवादी होने के नाते वे जन-जन का हित—सर्वोदय चाहते हैं। वह सबको समान बनाना चाहते हैं। हिंसा और उसकी प्रवृत्तियों की उन्होंने हमेशा खुल कर निन्दा की है। वे झूठ, फरेब और नितान्त स्वार्थ की राजनीति को बहुत हेय मानते हैं, क्योंकि अन्ततोगत्वा इससे देश का अपकार होता है। ऐसी राजनीति के प्रतिकार में उनकी देशभक्ति ताल ठोंक कर खड़ी हो जाती है। महत्त्वाकांक्षा उनमें भी है, किन्तु वह सार्थक सेवा के लिए है। इस जघन्य गरीबी के देश को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए वह अल्पकालीन "वोट बैंकों" के कदापि समर्थक नहीं। इससे देश का अहित होगा। महात्मा गांधी की तरह स्वदेश का दूरगामी हित उनका सर्वोपरि संकल्प है। अतः संत विनोबा के बाद समूचे हिन्दुस्तान में उन जैसा समता और सर्वोदयवादी विचारक आज कोई दूसरा हमारे बीच में नहीं है। चौधरी साहब के जेल चले जाने से श्रीमती गायत्री देवी का स्त्री-धन चुक गया : हाथ के कड़ों को जो उनके पास एक ही जेवर था, वह भी बेचना पड़ा। वे गाजियाबाद के कन्या बालिका विद्यालय में अध्यापिका थीं। बच्चों के लालन-पालन के लिए उसे भी छोड़ना पड़ा। फिर भी तहसील पर स्त्रियों के धरना-सत्याग्रह का उन्होंने नेतृत्व किया। वे पकड़ी भी गई, मगर छोड़ दी गई।

जेल से छूट कर आने पर चौधरी चरण सिंह दुगुने उत्साह से सार्वजनिक काम

में जुट गये। इसी बीच गान्धी जी के आन्दोलन के सामने अंग्रेजी हुकूमत पहली बार झुकी और गांधी-इरविन समझौता हुआ। उन्हीं दिनों डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव आया। कांग्रेस की ओर से उन्हें चुनाव लड़ने का हुक्म मिला। उनकी ख्याति चारों ओर इतनी अच्छी हो गई थी कि उनके विरुद्ध खड़ा होने के लिए किसी की हिम्मत ही नहीं हुई। वे निर्विरोध चुने गये। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कनिष्ठ उपाध्यक्ष भी चुने गये। एक नये कार्यकर्त्ता के लिए यह साधारण प्रतिष्ठा की बात नहीं थी। उनके सार्वजनिक जीवन की यह पहली कड़ी उतने ही महत्त्व की साबित हुई, जितने सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू और जवाहर लाल जी का अपने नगर पालिकाओं का अध्यक्ष चुना जाना।

सन् 1932 का सत्याग्रह आन्दोलन आ पहुंचा। उन्हीं दिनों नमक कानून आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने 12 नवम्बर, 1931 को गोलमेज परिषद् की बैठक लन्दन में बुलाई थी। राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा ने उस परिषद् में प्रतिनिधि भेजना अस्वीकार कर दिया था। परिषद् का हश्र जो होना था, हुआ। वह नितान्त असफल रही। 23 मार्च सन् 1932 को हिन्दुस्तान की अंग्रेजी हुकूमत ने देश के एकमत और गांधी जी की अपील की अवहेलना करते हुए प्रसिद्ध क्रान्तिकारी देश-भक्त भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी। यह गांधी-इरविन समझौते की भावना के बिलकुल खिलाफ कार्यवाही थी। कांग्रेस ने जेलों को भरने की योजना बनाई। चौधरी साहब को इस आन्दोलन में जेल जाने की आज्ञा नहीं मिली। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यक्ष चुने गये थे चौधरी खुशी राम। सन् 1930 में गुलावठी, जिला बुलन्दशहर में पुलिस फायरिंग में उन्हें गोली लगी थी। उसमें उनका आधा हाथ काट देना पड़ा। वे अचानक गिरफ्तार कर लिये गये। वरिष्ठ उपाध्यक्ष थे—मौलवी बशीर अहमद भट्ठे वाले। वे भी गिरफ्तार कर लिये गये। बागपत के राजभक्त नवाब जमशेद अली खां डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में विरोधी दल के नेता थे। नवाबों और राजाओं का विरोधी दल अंग्रेज हुकूमत के इशारों पर उठता-बैठता था। चौधरी साहब भी जेल चले जाते, तो वही पिट्ठू नवाब शासन द्वारा अध्यक्ष बना दिये जाते। इसलिए कांग्रेस ने चौधरी साहब को हुक्म दिया कि जब तक अध्यक्ष या वरिष्ठ उपाध्यक्ष जेल से वापस न आ जायें, तब तक वह अध्यक्ष पद से बोर्ड का काम चलाएं। इस तरह इस आन्दोलन में वे जेल नहीं जा सके।

लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंग्डन वायसराय बन कर आ चुके थे। अंग्रेजों का दमनचक्र तेज़तर हो चुका था। सन् 32 में होने वाली दूसरी गोलमेज परिषद् में कांग्रेस ने सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया और महात्मा गांधी को अपना एकमात्र प्रतिनिधि चुना। कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी लन्दन गये! वहां अंग्रेज कूटनीतिज्ञ परिषद् का ध्यान दूसरी समस्याओं में उलझा कर

हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता पर कोई विचार करने को तैयार नहीं थे। महात्मा गांधी ने उनसे खुल कर कहा—"आप लोग—अपने राष्ट्र के लूट मार करने के पाप से अपने हाथ को धो डालिये, भारत की आजादी स्वीकार कर लीजिए।" यह कैसे होता ? महात्मा जी दिसम्बर में भारत लौट आये। 4 जनवरी, 1933 को वह गिरफ्तार कर लिये गये।

उधर दूसरी ओर, ब्रिटिश हुकूमत हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की मांग को और कमजोर करने के लिए मुसलमानों की पृथकतावादी नीति की तरह हिन्दुओं में सवर्ण-अवर्ण का भेदभाव बढ़ा रही थी। ब्रिटिश प्रधानमंत्री मेकडानल्ड ने अछूतों के पृथक निर्वाचन की घोषणा की। गांधी जी ने अंग्रेज हुकूमत की इस चाल को निरस्त्र करने के लिए सितम्बर में आमरण अनशन शुरू किया। हिन्दू नेता अवर्ण और सवर्ण दोनों घबरा उठे। उन्होंने पृथक निर्वाचन पद्धति को समाप्त करने का समझौता कर लिया।

ब्रिटिश हुकूमत ने तीसरी गोल मेज परिषद् भी आमंत्रित की, जो पहली दो की तरह बेकार रही। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर शुरू हुआ। महात्मा जी गिरफ्तार कर लिये गये, कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। महात्मा जी को कुछ दिनों के बाद छोड़ दिया गया। छूटने के बाद सन् 1933-34 में महात्मा जी ने हरिजन-उद्धार का कार्यक्रम चलाया और सारे देश की दुबारा यात्रा की। गाजियाबाद अंचल में चौधरी चरण सिंह ने इस आन्दोलन को संचालित किया।

सन् 1934 में जय प्रकाश नारायण ने बम्बई में कांग्रेस समाजवादी दल का पहला अधिवेशन कराया। जे० पी० ऐसी समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादक थे, जिसमें उत्पादन के साधनों का समाजीकरण सन्निहित है। चौधरी साहब समतावादी होते हुए भी व्यक्तिगत प्रयत्न और स्वतन्त्रता के कट्टर पक्षपाती हैं। भारत में सूखा मौसम होने के कारण हमेशा से कृषि के साधन तो सहकारी रहे मगर जोत सदा व्यक्तिगत रही। उन्होंने उसमें भाग नहीं लिया। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में अपने को सौंपे हुए काम को करते रहे और हरिजन उद्धार के प्रचार में जुटे रहे।

स्वायत्त शासन संस्थाओं में अंग्रेजों की ऐसी नीति थी कि उनके राजभक्त और जी-हुजूर लोग ही थोड़ी बहुत सफलता से उनकी इच्छानुसार काम कर पाते थे। इन संस्थाओं पर शासन का कठोर नियंत्रण भी रहता था। चौधरी साहब को उपाध्यक्ष और अध्यक्ष पद से स्वायत्त संस्थाओं की कार्य प्रणाली को देखने समझने का अवसर मिला। वे वक्त काटने वाले जन प्रतिनिधि नहीं थे। हजारों लाखों दिलों के अंधेरे को अपने में समेटे वे अध्यक्ष पद से सीमित अधिकार क्षेत्र द्वारा ही प्रकाश फैलाने की चेष्टा करने लगे। काम की उन्हें लगन थी। कानूनी ज्ञान था ही। अतः बोर्ड का काम तेजी से चलने लगा। एक दिन वह गाजियाबाद से ठीक दस बजे मेरठ में

बोर्ड के कार्यालय पहुंच गये। अधिकारी और कर्मचारी देर से आने के आदि थे और कार्यालय प्रायः खाली था। चौधरी साहब ने देर से आने वालों से कोई क्रोध नहीं दिखाया। उनके मौन ने जादू किया और वे जब तक अध्यक्ष पद पर काम करते रहे, तब तक कर्मचारी समय से आते रहे। इस बात की मेरठ में बड़ी शोहरत फैली।

उन्होंने बोर्ड के स्कूलों, सड़कों और दूसरे कार्यों का जिले भर में निरीक्षण किया। बाद में उनकी यात्रा का भत्ता बिल बनाकर अधिकारियों ने उनके हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत किया। यात्रा का बिल ठीक नहीं बनाया गया था। उसमें रात्रि निवास और ठहराव ज्यादा दिखा कर चौधरी साहब को अधिक धन दिलाने की तरकीब की गयी थी। चौधरी साहब ने बिल को सही बनाने के लिए लौटा दिया। बोर्ड के अधिकारियों और कर्मचारियों की आंखें आश्चर्य से फट गयीं। ऐसा किसी ने अभी तक नहीं किया था। सभी अधिकारी और कर्मचारी सचेत हो गये। अपने पर कठोर नियंत्रण ही सबसे बड़ा अनुशासन है। दूसरे तो चुम्बक से खिंचे आते हैं। बोर्ड के कर्मचारियों को नयी दिशा मिली, काम करने का नया वातावरण मिला। यह थे चौधरी चरण सिंह प्रशासन के अपने प्रारंभिक काल में ही।

उन्होंने चपरासियों से निजी काम लेने पर भी कड़ाई की। अंग्रेजों के जमाने में चतुर्थ श्रेणी के चपरासी घरेलू टहलुओं की तरह इस्तेमाल किये जाते थे। आज भी इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। गरीब चपरासी अपनी मजबूरी से अधिकारियों और बड़े बाबुओं के घर का काम करते हैं। स्वतन्त्र देश में यह व्यक्ति का समादर नहीं। मगर सरकार के उच्चतम अधिकारी और पदाधिकारी ऐसा करते हैं, तब क्या किया जा सकता है? नये अध्यक्ष अपना निजी काम किसी चपरासी से नहीं कराते थे—इसका असर जरूर पड़ा। लेकिन विष इतना व्याप्त था कि वह मिटा नहीं। जब तक वेतनमानों में असमानता कम नहीं की जाती और शासन के हर कर्मचारी की गरिमा नहीं रखी जाती, तब तक वह मिटेगा भी नहीं। विदेश के उन्नत राष्ट्रों में चपरासी का पर्याय होता ही नहीं। यहां गरीबी के गहन प्रकोप के कारण चतुर्थ श्रेणी को हटाना भी समीचीन नहीं। हां, उन्हें बन्धुआ मजदूर नहीं बनाये रखने का प्रयास सफलता से हो सकता है।

जिला बोर्ड में चौधरी साहब को ग्रामीण जनता की व्यावहारिक कठिनाइयों का तथा शासन द्वारा उनके निराकरण का कुछ परिचय मिला। गांव तब तक साधारण विकास से भी अछूते थे। वहां आने-जाने के साधन नहीं के बराबर थे। सड़कें बहुत कम थीं। बैलगाड़ी खेतों और डगरों से आती जाती थी। गांवों में पीने के लिए अच्छे पानी की कल्पना भी नहीं थी। गांवों में पढ़ाई-लिखाई के साधन भी नहीं के बराबर थे। गांव अन्धकार और अंधविश्वास में सिमटे पड़े थे। लेकिन सदियों के इन पुरातन गांवों में तब तक बची रह गई थी—नैतिकता और ईमानदारी। पूर्वजों से

मिली संस्कृति के बल पर अंधेरों से घिर कर भी व्यक्ति और समूह में चारित्रिक दृढ़ता उजागर थी। आर्थिक स्थिति विपन्न थी। कृषि के तरीके भी पुराने थे और घोर मंदी तथा शोषण से गांवों की बहुसंख्यक जनता अत्यधिक पीड़ित थी। उन्हें यह भी नहीं सूझता था कि वे क्या करें ? अंग्रेजी शासन अपने स्वार्थ के लिए भारत की सर्वाधिक आबादी को अज्ञान और गरीबी के गड्ढे में दबाये रखना चाहता था। जनसमूह पंगु बना रहे, कुछ बोले नहीं, तभी अंग्रेजी शासन भारत में अक्षुण्ण रह सकता है। महात्मा गांधी की तरह चौधरी साहब ने अंग्रेजों की चाल को समझा और गांवों के विकास के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दिया। चौधरी साहब स्वयं गांव के थे। गाजियाबाद में वकील के नाते पास-पड़ोस के अंचलों की समस्याओं से भी परिचित थे। वह किसान मजदूरों की लाचारी को समझते थे। इस मानवता का विकास उनकी क्रय शक्ति को बढ़ा कर ही किया जा सकता है—यह उनके मन में बैठ गयी। अंग्रेजों के आने से पहले गांवों में खेती के साथ-साथ बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, दर्जीगिरी, कुम्हारी, रंगरेजी, चर्मकारी, कताई आदि अनेक प्रकार के गृह-उद्योग चलते थे। इस तरह कोई गांव केवल कृषि पर निर्भर नहीं रहता था और किसी भी गांव या उसके निवासी को बेरोजगारी का मुंह नहीं देखना पड़ता था। अंग्रेजों ने अपना शासन चन्द्र-सूर्य यावत् सुरक्षित रखने के लिए सबसे पहला कार्य जो किया—वह था गांवों के उद्योग-धन्धों को नष्ट करना। चौधरी साहब का अनुभवगम्य चिन्तन घरेलू उद्योग धंधों और कुटीर उद्योगों के प्रति और अधिक सजीव हो उठा। जिला बोर्ड में इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय कर पाना सम्भव नहीं था क्योंकि बोर्ड का बजट बहुत छोटा होता था। इसके लिए विस्तृत क्षेत्र की जरूरत थी। जिससे गांवों को पुनः स्वावलम्बी बनाया जा सके। उसके लिए काम करने का भरपूर अवसर जल्दी ही आ निकला। फरवरी सन् 1937 के चुनाव में कांग्रेस ने उन्हें बागपत-गाजियाबाद क्षेत्र से प्रान्तीय धारा सभा का चुनाव लड़ने के लिए अपना उम्मीदवार घोषित किया। यह चुनाव-क्षेत्र बहुत बड़ा था। आज इस क्षेत्र से विधान सभा के लिए आठ विधायक चुन कर आते हैं।

बड़े से बड़े कांग्रेसी भी इतने बड़े चुनाव क्षेत्र में खड़े होने से डरते थे। अंग्रेजों के प्रिय नवाब बागपत ने भी खड़े होने की हिम्मत नहीं की। अंग्रेजी शासन ने तब उनके खिलाफ वहां के एक जाट जमींदार को लड़ाया। बड़े जमींदारों का प्रभाव अभी मिटा नहीं था। पहले चुनावों में ग्रामीण क्षेत्रों से भी अधिकतर वे लोग ही चुने जाते थे। (सन् 1923 के यू० पी० काउन्सिल के चुनाव में 77 ग्रामीण सीटों से 58 बड़े जमींदार चुने गये थे)। इस बार उन्होंने मुंह की खायी। वह बुरी तरह हार गये। चौधरी साहब अप्रत्याशित बहुमत से विदेशी शासन के उम्मीदवार के खिलाफ विजयी हुए। तब से आज तक वह इस क्षेत्र के आठ निर्वाचन क्षेत्रों में एक क्षेत्र छपरौली से रिकार्ड तोड़ वोटों से जीतते चले आ रहे हैं। सन् 1971 में भारतीय क्रान्ति दल के

उम्मीदवार के रूप में वे 52 हजार वोटों से जीते थे, जो हिन्दुस्तान का रिकार्ड है।

सन् 1937 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी को सब प्रान्तों में अप्रत्याशित सफलता मिली। भारत भर में कुल 1585 सीटों में उन्हें 711 सीटें मिली। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश उम्मीदवार समृद्ध किसान ही थे। साधारण हैसियत के किसानों को नहीं के बराबर संख्या में लड़ाया गया था। चौधरी साहब प्रतिभा-सम्पन्न नौजवान थे। इसलिए कांग्रेस ने उन्हें अपना उम्मीदवार बनाया था। उनकी हैसियत साधारण थी। उनके पिता के पास कुल जमा दस या साढ़े दस एकड़ जमीन थी। चौधरी साहब तीन भाई थे। तीन-सवा-तीन एकड़ वाले किसान को विरोधियों ने ईर्ष्यावश ही बाद में—बहुत बाद कुलक अर्थात् बड़ा जमींदार या उसका पोषक कहना शुरू कर दिया—जो नितान्त झूठ है।

प्रान्तीय धारा सभा को भी अंग्रेजी शासन ने सीमित अधिकार दिये थे। एक प्रकार से वह मात्र वाद-विवाद की संस्था थी और प्रभावकारी रूप में कुछ कर सकने में असमर्थ थी। वह चाहे जो प्रस्ताव पास करे, अंग्रेज शासक मनमानी करते थे। फिर भी कांग्रेस दल में एक-से-एक दिग्गज थे, जो अपनी बहसों से शासकों के दांत खट्टे कर देते थे। युवा चौधरी साहब भी उन्हीं दिग्गजों में से एक थे, जिनकी प्रतिभा की शुरू में ही बड़ी धाक जम गई थी।

एम० एल० ए० होते ही उन्होंने किसानों को अपनी भूमि पर स्वामित्त्व दिलाने के लिए एक बिल "Land Utilization Bill" का मसविदा तैयार कर सभी विधायकों को भेजा। उस बिल में हलधरों को जोत की जमीन पर स्वामित्त्व दिलाने का प्राविधान था। उसमें अपने लगान का दस गुना जमा कर देने से खेतों का मालिक बनने का प्राविधान था। सारे भारत में इस प्रकार का यह पहला प्रयास था। यहां यह उल्लेख जरूरी है कि उस दशक में अनाज का मूल्य पचास प्रतिशत से अधिक गिर जाने के कारण किसानों की आर्थिक दशा इतनी खराब हो गई थी कि वे लगान या मालगुजारी देने में भी असमर्थ थे। अंग्रेज शासन को किसानों की नहीं, प्रत्युत अपने एजेन्टों—जमींदारों और ताल्लुकदारों को खुश रखने की पड़ी थी। इससे किसानों में बड़ी बेचैनी फैली। आन्ध्र प्रदेश में प्रो० एन० जी० रंगा ने इन्हीं कारणों से सन् 1935 में एक सुदृढ़ किसान सभा स्थापित की। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने भी इस दिशा में पहल की। सन् 1936 में स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान सम्मेलन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। उस सम्मेलन में भी जमींदारी खत्म करने की मांग की गई थी। किसानों का ऋण माफ करने तथा भूमिहीन किसानों को जमीन देने के साथ ही कृषि मजदूरी को उचित रूप में निर्धारित करने का प्रस्ताव भी पारित हुआ था। एक सितम्बर 1936 को किसान दिवस मनाया गया था। लेकिन चौधरी साहब के उपर्युक्त बिल में किसानों

को जोत की जमीन दिलाने की ठोस प्रक्रिया का पहला विवरण सन्निहित था। विदेशी शासकों ने उस बिल को जो जमींदारों और ताल्लुकदारों के विरुद्ध पड़ता, धारा सभा में पेश होने की अनुमति नहीं दी। आजादी के बाद उसी बिल के आधार पर जमींदारी उन्मूलन विधेयक में दस गुना जमा कराकर भूमि पर स्वामित्त्व का अधिकार पारित किया गया।

सक्रिय राजनीति में चौधरी साहब की प्रतिभा की ख्याति अब प्रदेश के बाहर भी फैलने लगी। अनबटे पंजाब में चौधरी छोटू राम ने किसानों की यूनयनिस्ट पार्टी का संगठन किया। आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर हिन्दू-मुसलमानों की यह पार्टी इतनी संगठित हुई कि कांग्रेस को वहां पनपने का अवसर नहीं मिल पा रहा था। देश के बंटवारे के समय तक यूनियनिस्ट पार्टी पंजाब में बहुमत में रही। उसी पार्टी के सर सिकन्दर हयात खां और मलिक खिज्र हयात खां थे। पंजाब के कांग्रेसी अपनी शक्ति बढ़ाना चाहते थे। रोहतक के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी पं० श्रीराम शर्मा ने यूनियनिस्ट पार्टी के विरोध में कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिए पंजाब में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सभाओं और सम्मेलनों का आयोजन किया। उन सभाओं में चौधरी साहब को भाषण देने के लिए अनेक बार बुलाया गया। चौधरी साहब पंजाब गये और कांग्रेस के संगठन के प्रचार में उन्होंने बहुत मदद की। पं० श्रीराम शर्मा और पंजाब कांग्रेस के दूसरे पदाधिकारी इसके लिए चौधरी साहब के बड़े आभारी रहे।

चौधरी साहब आत्म-विज्ञापन से कोसों दूर रहकर कांग्रेस के प्रति बड़ी निष्ठा और लगन से रचनात्मक कार्यों द्वारा प्रचार कर रहे थे। इससे उनके काम का दायरा बड़ा होने लगा। उनकी प्रखर प्रतिभा के लिए गाजियाबाद तहसील का क्षेत्र अब छोटा साबित होने लगा था। कांग्रेस के काम के लिए उन्हें हर दूसरे दिन मेरठ भी आना जाना पड़ता था। अतः मेरठ के कांग्रेस जनों विशेष कर श्री विष्णु शरण जी दुबलिश की सलाह पर वे सन् 1939 में गाजियाबाद से मेरठ आ गये।

गाजियाबाद में चौधरी दम्पति को एक मर्मान्तिक दुःख भी सहना पड़ा। सन् 1934-35 में तीन पुत्रियों पर हुआ उनका अकेला लड़का साढ़े दस महीने का होकर अकस्मात् नहीं हो गया। बच्चा बड़ा स्वस्थ और सुन्दर था। उसे गाजियाबाद के उस वर्ष के "बेबी-शो" में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया था। चौधरी साहब ने अपने असह्य दुःख को कभी प्रकट नहीं होने दिया। श्रीमती गायत्री देवी और परिवार के दूसरे लोग उससे बहुत विह्वल रहे। मेरठ के व्यस्त और संघर्षपूर्ण जीवन में उस व्यक्तिगत दुःख को अधिकाधिक भूलने का भी अवसर मिला। वैसे चौधरी चरण सिंह आज तक परिवार वर्ग के बच्चे-बच्चियों से असाधारण कोटि की ममता और स्नेह रखते हैं। ऊंचे से ऊंचे पद पर, व्यस्त से व्यस्त जीवन में शाम का समय वे पारिवारिक बच्चों के साथ खेलने में बिताते हैं। यही उनका एकमात्र मनोरंजन है। इसमें क्या पहले पुत्र-वियोग के मर्मान्तिक दुःख की छाया नहीं निहित है?

समरांगण : मेरठ में

(1939 से 1947)

श्री विष्णु शरण जी दुबलिश मेरठ के क्रान्तिकारी आन्दोलन की उपज थे। काकोरी केस में उन्हें कालापानी की सजा मिली। ब्रिटिश शासन द्वारा वे इतने खतरनाक माने गये थे कि उन्हें गिरफ्तार करने के लिए एक अनाथालय को, जिसके वे संचालक थे, सशस्त्र सेना ने घेरा था। अण्डमान से छूटकर सन् 1938 में जैसे ही वह वापस आये, शीघ्र ही मेरठ जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान चुन लिये गये। चौधरी लुत्फ अली खां उपाध्यक्ष थे। मेरठ में इन दो सज्जनों का सहयोग कांग्रेस के काम में चौधरी साहब के लिए सोने में सुहागा बना।

मेरठ कमिश्नरी का क्षेत्र था। अंग्रेजों की गोरी और हिन्दुस्तानी फौजों का वहां बड़ा केन्द्र था। प्रान्त के प्रशासकीय और सार्वजनिक महत्त्व के आधे दर्जन बड़े नगरों में उसकी गिनती होती थी। यहां कालेज थे। नौकर पेशा लोग फौज प्रशासन में साधारण तथा ऊंचे पदों पर बहुतायत से थे। वहां अन्य रोजगार-धन्धे, व्यापार आदि भी खासे थे। गन्ने का क्षेत्र होने के कारण यहां चीनी बनाने अथवा अन्य प्रकार के दूसरे भी कुछ कल-कारखाने थे। मोदी नगर का औद्योगिक केन्द्र विकसित हो रहा था। अपने पुराने इतिहास तथा दिल्ली के सान्निध्य के कारण मेरठ जिले की छोटी बड़ी हर घटना की उत्तर प्रदेश ही नहीं बल्कि दूर-दूर तक प्रतिक्रिया होती थी। यहां के लोग भी उद्यमी और जी-तोड़ मेहनत करने वाले थे। जाट-बहुल क्षेत्र होने के कारण जन-जन में बराबरी और समादर का भाव था। जाटों का स्वाभिमान जगत प्रसिद्ध है। वह किसी भी हैसियत का क्यों न हो, किसी दूसरे से अपने को कदापि छोटा मानने को तैयार नहीं है। आंखें दिखा कर बड़ा से बड़ा उसे दबा नहीं सकता है। वह अपनी आन पर बलि होना जानता है। मेरठ में चौधरी चरण सिंह को पहली बार देश की स्वतन्त्रता के लिए अपनी जन्मजात प्रतिभा को जाज्वल्यमान रूप में प्रदर्शित करने का अनुकूल अवसर मिला। तहसील से कमिश्नरी के विस्तृत क्षेत्र में उनका आना गंगा की धारा का अपने जन्म के पहाड़ों के संकीर्ण कगारों को छोड़ कर हरिद्वार के सपाट मैदान में पहुंचने के बराबर था। आगे धारा के पाट को अनंत समुद्र में मिलने तक निरन्तर चौड़ा ही होना था।

महात्मा गांधी के आन्दोलनों और जन-जागरण यात्राओं से स्वतन्त्रता की

आवाज गांवों में तब तक गूंजने लगी थी। ब्रिटिश नीतियों की चौपालों में चर्चा होने लगी थी और स्वतन्त्रता की आकांक्षा जन-जन में जाग उठी थी। लेकिन उस संघर्ष की सक्रियता से सर्व-साधारण और गांव अभी अछूते थे। चौधरी चरण सिंह जैसे श्रेष्ठ कार्यकर्ता को भी वहां काम करने में बड़े साहस, धैर्य और निपुणता की जरूरत पड़ी। अंग्रेजी शासन की निरंकुशता और जुल्मों से गांवों में बहुत डर व्याप्त था। फौज से लौटे हुए पेंशनर यह कहते हुए सुने जाते थे कि अंग्रेजी साम्राज्य का सूरज दुनिया में कहीं डूबता नहीं, वह गांधी जी और उनके अनुयायियों के चरखे व सत्याग्रह के डर से हिन्दुस्तान नहीं छोड़ जायेंगे। गांवों में कांग्रेस की सभा करना बहुत आसान नहीं था और कुछ गांवों में यह सम्भव नहीं हो पाता था। गांवों में कुछ लोग तो कांग्रेसजनों के आदर सत्कार से हिचकते थे। चौधरी साहब को याद है कि कतिपय गांवों में अस-मय पहुंचने पर भी लोगों ने नाश्ता पानी तक के लिए नहीं पूछा, यद्यपि यह भारतीय परम्परा के बिलकुल प्रतिकूल था। चौधरी साहब ने फिर भी हिम्मत से कांग्रेस जनों के साथ गांवों का दौरा किया और कांग्रेस के कार्यक्रमों का प्रचार किया। कार्यक्रम स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए जन-जागरण के साथ-साथ हरिजनों तथा दूसरे गरीब लोगों के उत्थान के लिए रचनात्मक कामों को करना था। चौधरी साहब को इसकी लगन भी थी। उनकी देख-रेख में कांग्रेस का काम उतनी ही तेजी से चल निकला, जितनी उसमें बाधाएं थीं। नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजी शासन की नज़रों में वह खटकने लगे। सन् 1940 में बिना किसी आन्दोलन या सत्याग्रह के उन्हें अकारण गिरफ्तार कर लिया गया। उनके खिलाफ कोई आरोप था नहीं। इसलिए कुछ सप्ताह के हीला-हवाला के बाद वह जेल से छोड़ दिये गये। यह उनकी दूसरी जेल यात्रा थी।

बागपत क्षेत्र से एम०एल०ए० होने के कारण भी उन्हें कांग्रेस और सार्वजनिक महत्त्व के दूसरे कामों में अधिकाधिक समय देना पड़ा। मेरठ में कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिए पहला काम कांग्रेस का भवन बनवाना था। चौधरी साहब ने इसके लिए चन्दा इकट्ठा किया और भवन का निर्माण शुरू कराया। वह भवन आज भी मेरठ में कांग्रेस का केन्द्र है। वे सार्वजनिक कामों में इतने व्यस्त रहने लगे कि वकालत करने के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता था। वैसे वे मेरठ में, असौढ़ा हाउस के, तब के मेरठ कांग्रेस के नेता चौधरी रघुवीर नारायण सिंह, की कोठी के बाहरी हिस्से में वकील का तख्ता लगाकर रहते थे। दीवानी की अदालतों में बाबू घासी राम से, जो अपनी विद्वता के कारण पंडित कहलाते थे, उन्होंने वकालत करने का प्रशिक्षण पाया। लेकिन जब सारा समय कांग्रेस को समर्पित था, तब वकालत पनपती कैसे? वकालत के पेशे में एकांगी निष्ठा और मनोयोग चाहिए। वह संभव नहीं हुआ और वकालत उनके लिए मात्र औपचारिकता रह गयी। उनका तन-मन कांग्रेस के राष्ट्रीय कामों में जुटा था। धन उनके पास था नहीं, धन की परवाह भी नहीं थी। पत्नी का

स्त्री-धन, आभूषण आदि, जेल यात्रा के दिनों में बिक चुके थे। पिता अथवा किसी कुटुम्बी से धन पाने का सवाल नहीं था। उन्हें आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा। सोना तपने से ही निखरता है। वे सहज ही मेरठ कांग्रेस के चौधरी रघुवीर नारायण सिंह की जगह सर्वमान्य नेता बन गये। चौधरी रघुवीर नारायण सिंह बड़े जमींदार थे, धनाढ्य थे। अंग्रेजों की मजिस्ट्रेसी और राय बहादुरी भी उन्होंने छोड़ी थी। मेरठ के गांधी आश्रम वाले भवन को खरीदने में उन्होंने मदद की थी। सामन्ती जमींदार होने के कारण राजनीति की प्रेरणा में उनका वर्ग बोध भी शामिल था। चौधरी चरण सिंह गरीब किसान के बेटे थे। प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार ने उनके बारे में सच लिखा है कि देहाती रहते-दीखने में उन्हें तनिक भी उद्यम नहीं करना पड़ता है। किसानों ने, मजदूरों ने, उन्हें अपना जैसा पाकर सिर-आंखों पर बिठाया। जिले के नेतृत्व के दृष्टिकोण में शुभ परिवर्तन आया। उत्पीड़ित किसानों को उनका अपने बीच का सच्चा पथ-प्रदर्शक मिला। इससे मेरठ और पास-पड़ोस के जिलों में, निकटवर्ती पंजाब के क्षेत्रों में, मेरठ की कांग्रेस की ख्याति खूब फैली। एक प्रभावशाली जमींदार के स्थान पर एक साधारण किसान के नौजवान बेटे का मेरठ कांग्रेस का अध्यक्ष बन जाना कोई साधारण बात नहीं थी। तब तक जमींदार और बड़े वकील ही कांग्रेस पर छाये हुए थे। इस दूरगामी महत्त्व की घटना से मेरठ क्षेत्र में राष्ट्रीय कांग्रेस की जड़ें बहुत गहरी हुई। साथ ही एक प्रगतिपूर्ण परम्परा का श्रीगणेश हुआ। मेरठ षड्यंत्र केस के अभियुक्त स्वर्गीय पंडित गौरीशंकर ने देश-काल की चर्चा करते हुए उक्त परिवर्तन मेरठ जैसे फौजी क्षेत्र के लिए अत्यन्त प्रगतिशील घटना बताया था। उनकी राय में मेरठ ही नहीं, सारे पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश में इसका असर पड़ना अवश्यम्भावी था। चौधरी साहब सन् 1929 से 45 तक लगातार मेरठ कांग्रेस के अध्यक्ष या महामंत्री रहे। मेरठ की आम खुशहाली में वहां के निवासियों की परम्परागत अनुदारिता का मनोहारी समावेश है। बड़े जमींदार के स्थान पर एक अत्यन्त साधारण किसान के बेटे का नेतृत्व आसानी से कब स्वीकार होता? राजभक्त नवाब, राजा और जमींदारों को तब अंग्रेजी शासन का प्रश्रय प्राप्त था। जन साधारण को जीवन की सुविधाओं को शासन से प्राप्त कराने में उन्हीं लोगों का बोलबाला था। नेतृत्व स्वीकार इसलिए हुआ कि उस साधारण किसान के बेटे में निस्वार्थ सेवा की अद्भुत क्षमता थी। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरठ कांग्रेस का भवन है, जिसे चौधरी रघुवीर नारायण सिंह जैसे बड़े जमींदार नहीं बना पाये थे। लेकिन किसान के बेटे ने बनवा दिया। किसान के बेटे को उस भवन को बनाने के लिए साधारण-किसान व मजदूरों ने खुले हाथ चन्दा दिया और भवन का निर्माण प्रारम्भ हुआ। उसने स्वयं किसी पूंजीपति श्रीमान् से चंदे की याचना नहीं की। यह छोटी लगने वाली बात चौधरी साहब के चरित्र की निधि बनी।

सन् 1937 के चुनावों के बाद उत्तर प्रदेश में भी पंडित गोविन्द वल्लभ पंत के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बना। सन् 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के अधीन मंत्रिमंडल के सीमित अधिकार थे। अंग्रेज गवर्नरों को मंत्रिपरिषद् की सलाह को मानने या न मानने का विशेषाधिकार था। अधिकतर अंग्रेज अधिकारी ही जिलाधीश और पुलिस कप्तान थे। वही कमिश्नर होते थे। एकाध जिलों में अगर हिन्दुस्तानी कलेक्टर तैनात था, तो वहां अंग्रेज पुलिस अधीक्षक जरूर नियुक्त किया जाता था। वह पुलिस अधीक्षक अपने वरिष्ठ अधिकारी, हिन्दुस्तानी कलेक्टर, पर कड़ी निगाह रखता था। सीमित अधिकारों में भी जनता के उत्साह को ध्यान में रखते हुए कांग्रेसी मंत्रिमंडल कुछ न कुछ जनोपयोगी काम करते ही। मंत्रिमंडल प्रदेश के प्रशासन में कोई मौलिक परिवर्तन ला ही नहीं सकता था। वह जनहितकारी कार्यों में चुस्ती भी नहीं ला पाया। पुलिस के रवैये में राई-रत्ती फर्क नहीं आया। चौधरी साहब ने संबंधित मंत्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। कोई असर नहीं पड़ा। तब उन्होंने कांग्रेसी विधायकों के हस्ताक्षर कराकर कांग्रेसी विधायक दल की बैठक की मांग की। पंत जी बैठक के विरुद्ध थे। लेकिन बैठक बुलाई गयी। उसमें चौधरी चरण सिंह ने सोदाहरण पुलिस और प्रशासन की कार्य-प्रणाली की कटु आलोचना की। आलोचना इतनी सारगर्भित थी जैसे वह अविश्वास का प्रस्ताव हो। बैठक की मांग का यह उद्देश्य कदापि नहीं था। मंत्रिपरिषद् के सदस्य और पंत जी बहुत मर्माहत हुए। पंत जी ने जवाहर लाल जी को बुलाया। नेहरू ने चौधरी साहब को मिलने का समय दिया, उनके तर्कों को ध्यान से सुना और उन पर यथोचित कार्यवाही करने का आश्वासन दिया। विधायकों में ही नहीं, जनसाधारण में भी चौधरी साहब की मांग के औचित्य का समर्थन हुआ। दूसरे सूबों में भी यह खबर फैली और वहां मंत्रिमंडलों में काम की नयी भावना जगी। मंत्रिमंडल भी सजग हुए। जनमानस को प्रजातंत्र प्रणाली के नये रूप का अनुभव हुआ। इससे आजादी के संघर्ष को बल और विश्वास मिला। इंग्लैंड के सूरज के कहीं भी अस्त न होने का हव्वा मिटने लगा। लोगों में उत्तरदायी प्रशासन की उत्कंठा तीव्र होने लगी।

उत्तर प्रदेश की कांग्रेसी मंत्रिपरिषद् ने किसानों के लगान में कमी करने और कृषि के लिए दूसरे कल्याणकारी कार्यों को करने की योजना बनाई थी। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने उसमें अवरोध पैदा किया। हुआ यह था कि चुनाव लड़ते समय मुस्लिम लीग और कांग्रेस में नवाब छतारी के "राष्ट्रीय कृषक दल" के खिलाफ एक सामंजस्य स्थापित हो गया था। नवाब छतारी का दल अंग्रेजी शासन के इशारे पर चुनाव के मैदान में उतरा था। मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों के ही उम्मीदवार राष्ट्रीय कृषक दल के उम्मीदवारों के खिलाफ लड़े। चुनाव में मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग के अधिक सदस्य जीत कर आये। कांग्रेस के मुस्लिम सदस्य दो तीन ही चुनाव जीते।

मुस्लिम लीग मंत्रिमंडल में साझेदारी के रूप में भाग लेने को तैयार थी। नेहरू ने उन्हें कांग्रेस विधायक दल का सदस्य बन जाने की शर्त रखी। यह शर्त स्वीकार न होती, न हुई। राजनीति विशारदों का कहना है कि मुस्लिम लीग की अड़ियल कटुता यहीं से उभरी जो बाद में देश के लिए घातक साबित हुई। मुस्लिम लीग इस तरह मंत्रि-परिषद् में शामिल नहीं हुई और उसने मंत्रिपरिषद् के काम में रोड़े अटकाना शुरू कर दिया। अंग्रेज गवर्नर और अधिकारी कांग्रेसी मंत्रिमंडल के खिलाफ थे ही। उत्तर प्रदेश के हिन्दू पूंजीपतियों ने भी अपना सामंती ऐश्वर्य सुरक्षित रखने के लिए मुस्लिम लीग की सहायता की। मंत्रिपरिषद् के अधिकार सीमित थे ही। उनके अधिकारों की सही स्थिति इसी से प्रकट हो जायेगी कि राजनैतिक कैदियों को छोड़ने की उत्तर प्रदेश और बिहार के कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की संस्तुति को गवर्नरों ने नहीं माना। इस पर दोनों मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र भी दिया। बाद में गवर्नरों ने उनकी संस्तुति स्वीकार की और राजनैतिक कैदी छोड़े गये। एक तो मंत्रिपरिषद्ों के सीमित अधिकार दूसरे बड़े जमीं-दारों और पूंजीपतियों का कांग्रेस के प्रगतिपूर्ण कामों का प्रकट-अप्रकट विरोध जनोपयोगी कामों की गति बहुत फीकी हो रहीं। तब तक 1 सितम्बर 1939 को दूसरा विश्वव्यापी महायुद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश हुकूमत ने बिना मंत्रिपरिषदों या हिन्दुस्तान के किसी भी राजनैतिक नेता या संगठन की राय लिए, भारत को अपनी ओर से युद्ध में झोंक दिया।

राष्ट्रीय कांग्रेस तानाशाही ताकतों के विरुद्ध थी। लेकिन दूसरे देश या देशों के लिए लड़ मरने से उसे क्या मिलता, जब हिन्दुस्तान स्वयं ही पराधीन था। उसने मांग की कि ब्रिटेन युद्ध के उद्देश्यों की साफ-साफ घोषणा करे, हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता का स्वरूप चाहे वह युद्ध की समाप्ति के बाद का ही क्यों न हों, स्पष्ट करे तथा युद्ध में तत्काल जनसहयोग प्राप्त करने के लिए केन्द्र और प्रान्तों में उत्तरदायी स्वशासन स्थापित करे। लड़ाई के प्रारम्भ होते ही इंग्लैंड में प्रजातंत्र की बड़ी-बड़ी बातें बनायी गयी थीं। वे कोरी छलावा निकलीं। चर्चिल की सरकार हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता क्या स्वायत्तता भी कदापि नहीं देना चाहती थी। चर्चिल की यह घोषित नीति थी कि जर्मनी को हरा कर अगर ब्रिटिश साम्राज्य और अधिक जबर्दस्त न बनाया जा सके, तब भी उसे अफ्रीका और एशिया में अपना साम्राज्य ज्यों का त्यों कायम रखना चाहिए। हिन्दुस्तान की स्थिति बड़ी विकट बन गयी। वह तानाशाह ताकतों को हराने के पक्ष में था, लेकिन अपनी आजादी चाहता था। इंग्लैंड की साम्राज्यशाही से महात्मा गांधी को उनके इस संकट के समय में हिन्दुस्तान के लिए बड़ी आशा थी। अंग्रेजी नीति से उन्हें गहरी निराशा हुई। उन्होंने विश्व के अमेरिका आदि दूसरे शक्तिशाली देशों का हिन्दुस्तान की कठिन समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए व्यक्ति-गत सत्याग्रह का ऐलान किया। व्यक्तिगत सत्याग्रह इसलिए कि इंग्लैंड और मित्र राष्ट्रों को युद्ध के परिचालन में कोई कठिनाई न पड़े। अंग्रेजी शासन ने महात्मा जी

Second imprisonment

का अभीष्ट नहीं समझा। वह कांग्रेस की मांग पर उसके विरुद्ध तुला बैठा था। उसने देश भर के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। चौधरी चरण सिंह मेरठ भू-भाग के एक छात्र नेता थे। उन्हें नवम्बर सन् चालीस के अन्तिम सप्ताह में गिरफ्तार कर एक साल की सजा दे दी गयी। पहले वे मेरठ की सेन्ट्रल जेल में रखे गये। उनको वहां रखना निरापद न समझ कर बरेली की जेल को भेज दिया गया। वहां से साल भर की सजा काट कर वे अक्तूबर सन् 1941 में छूटे।

जेल में इस बार चौधरी साहब ने भारतीय संस्कारों पर एक पुस्तक लिखी। आर्य समाजी होने के नाते उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का गहरा अध्ययन किया था। परिवार वर्ग की भारतीय परम्परा थी ही। पांच बच्चों के पिता बनकर उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए भारतीय आचारों को क्रमबद्ध कर यथार्थ रूप में बच्चों को सिखलाने की जरूरत पड़ी। बरेली जेल में उन्होंने अपनी 'शिष्टाचार' का अधिकांश भाग लिख डाला। जेल में सवेरे बैरक के पास एक पेड़ के नीचे कम्बल पर बैठ कर 'शिष्टाचार' का अधिकांश भाग लिखा गया। बाद में उन्होंने कलकत्ता स्थित 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' से इस विषय पर अंग्रेजी की विलायत में प्रकाशित एक पुस्तक यह देखने को मंगायी कि उसमें कुछ नयी बात हो तो उसे भी पुस्तक में जोड़ें। कोई ऐसी बात मिली नहीं जो भारतीय संस्कारों में शामिल की जा सके।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में जब वे गिरफ्तार हुए तो उनकी भैंस कुर्क की गई और 'शिष्टाचार' की पाण्डुलिपि भी पुलिस उठा ले गयी। जेल से उस बार छूटने के बहुत बाद वह पाण्डुलिपि लौटायी गयी। यह 'शिष्टाचार' अपने विषय की यथार्थ अनुभवों पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। बच्चों क्या युवकों के विकास के लिए परम्परागत भारतीय आचार-व्यवहार की ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं।

उनके जेल से लौटने तक युद्ध का नक्शा तेजी से बदल चुका था। यूरोप में मित्र राष्ट्रों के छक्के छूट रहे थे। जर्मन सेनाएं पूरे यूरोप को रौंद कर इंग्लैंड की खाड़ी के पार उस पर आक्रमण करने को बन्दूकें साधे तैयार थीं। मध्य एशिया तथा मिस्र के मैदान में, जर्मनी तेजी से अंग्रेजों को पीछे धकेल रहा था। इधर सुदूर पूरब में जापान अंग्रेजों के तथाकथित दुर्भेद्यगढ़ सिंगापुर और मलाया को जीत कर साथ ही बोर्नियो, जावा, सुमात्रा आदि द्वीप समूहों को स्वतंत्र करा कर, बर्मा में हिन्दुस्तान की सरहद की ओर तेजी से बढ़ रहा था। इतने आसन्न खतरे पर भी चर्चिल और ब्रिटिश हुकूमत स्थिति की गम्भीरता को अनदेखा कर रहे थे। भारत की स्वतंत्रता को वह किसी भाव स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इससे भारतीय जन मानस में अंग्रेजों के खिलाफ आग धधकने लगी। उसकी आंच देश के बाहर भी पहुंची। सिंगापुर में जापानियों को आत्म-समर्पण करने वाली अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी सेना ने जनरल मोहन सिंह के नेतृत्व में अपने को 'आजाद हिन्द फौज' घोषित कर जापानी सहयोग से भारत पर

स्वदेश को स्वतंत्र कराने के लिए आक्रमण करने की घोषणा की। चर्चिल और ब्रिटिश हुकूमत को अब लेने के देने पड़े। उन्होंने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को भारतीय स्वायत्तता की एक योजना के साथ भारतीय नेताओं से समझौता-वार्ता करने के लिए भेजा।

क्रिप्स योजना के दो भाग थे। पहले भाग में हिन्दुस्तान का भावी संविधान बनाने का तरीका बताया गया था। दूसरे भाग में वायसराय की तत्कालीन काउन्सिल (कार्यकारी परिषद्) में भारतीय सदस्यों के नामांकन का प्राविधान था। काउन्सिल के बारे में केवल इतना बताया गया था कि उसको सेना और युद्ध सम्बन्धी अधिकार नहीं रहेंगे। इससे यह समझा गया कि दूसरे भागों में काउन्सिल को पूरा अधिकार होगा। बाद में विचार-विमर्श और सवाल-जवाब से यह धोखा निकला। पहले भाग में भी एक चाल चली गयी थी। उसमें कहा गया था कि लड़ाई के बाद हिन्दुस्तान को दूसरे उपनिवेशों की तरह अधिकार दिया जाएगा और वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हो सकेगा। विधान बनाने के लिए केन्द्रीय परिषद् के सदस्यों का प्रांतीय धारा सभाओं द्वारा चुनाव का प्राविधान था। किन्तु उसमें प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग होने का अधिकार भी दिया गया था। इससे ब्रिटिश हुकूमत की चाल एकदम साफ हो गयी। प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग होने का अधिकार देकर उन्होंने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने सन् 1940 के अपने अधिवेशन में भारतवर्ष का विभाजन करने अथवा पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित कर दिया था। कांग्रेस ऐसी क्रिप्स योजना को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। अमेरिकन सरकार ने वार्ता विफल न होने देने के लिए अपने एक प्रतिनिधि कर्नल जॉनसन को भारत भेजा। उन्होंने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स और हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों को सलाह-सुझाव देकर योजना को सफल कराने की कोशिश की। उसका भी कोई लाभ नहीं हुआ। क्योंकि रक्षा विभाग और भारत की स्वतंत्रता के विषय पर चर्चिल और ब्रिटिश हुकूमत टस से मस नहीं हुए। क्रिप्स ने पहले राष्ट्रीय सरकार की बात की थी। वह भी झूठ निकली। इस तरह क्रिप्स योजना एक उलझाने वाली बात साबित हुई। उसे कांग्रेस ने अन्त में अस्वीकृत कर दिया। क्रिप्स अपनी योजना को लेकर तत्काल वापिस चले गये।

महात्मा गांधी और कांग्रेस के लिए हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहना सम्भव नहीं था। हिन्दुस्तानी फौज युद्ध में इंग्लैंड के लिए लड़ रही थी। मित्र राष्ट्रों की सब उपनिवेशों को स्वतंत्र करने की घोषणा हो चुकी थी। भारत ही उससे अलग क्यों रखा गया था? अतः गांधी जी ने 8 अगस्त सन् 1942 को आधी रात के कुछ ही देर बाद बम्बई में अंग्रेजों को "भारत छोड़ो" का नारा दिया और भारतीयों को "करो या मरो" का। सवेरा होने भी नहीं पाया कि महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यकारिणी के दूसरे सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। महात्मा गांधी का उक्त नारा तथा 9 अगस्त सन्

1942 का दिन भारत के इतिहास में अनन्त काल तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। "करो या मरो" ने सारे भारत को एक जुट बनाकर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ खड़ा कर दिया। देश भर में यातायात के साधनों, जैसे : रेल, पुल, डाक, स्टेशन, तार आदि को तोड़ा-फोड़ा जाने लगा। उद्देश्य यह था कि अंग्रेजी सेनाओं को लड़ाई के विभिन्न क्षेत्रों में रसद और सामरिक महत्त्व के दूसरे सामान न पहुंच सकें। कितने ही जिले, तहसील और अंचल अपने को स्वतंत्र घोषित कर समानान्तर सरकार चलाने लगे। बंगाल में तामलुक, महाराष्ट्र में सतारा, उड़ीसा में तालचेर और उत्तर प्रदेश में बलिया में स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकारें बनीं। श्री जय प्रकाश नारायण ने हजारीबाग जेल की कड़ी सुरक्षा के बावजूद सफलतापूर्वक भाग कर भारत छोड़ो आन्दोलन का उत्तर प्रदेश-बिहार में ही नहीं, भारत भर में एक कुशल नेतृत्व का उदाहरण पेश किया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में बलिया जिले के सभी थाने राष्ट्रीय सरकार के कब्जे में आ गये। बिहार में अस्सी प्रतिशत थानों पर जनता का कब्जा हो गया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इस आन्दोलन को चलाने की जिम्मेदारी चौधरी चरण सिंह ने उठाई। वे भूमिगत होकर गुप्त रूप से गांव-गांव, अंचल-अंचल घूम-घूम कर आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे। उनके मेरठ के प्रमुख सहयोगी दाहा निवासी चौ० हरि सिंह और दोघट के श्री पृथ्वी सिंह प्रेमी ने उनके काम में बड़ी मदद की। मवाना, सरधना, हापुड़ और गाजियाबाद तहसीलों में यातायात सम्बन्धी तोड़फोड़ का काम प्रभावी रूप से हुआ। भमौरी गांव में पुलिस की गोली से पांच स्वतंत्रता सेनानी शहीद हुए। हापुड़ में भी गोली वर्षा हुई। कमिश्नरी के दूसरे जिलों में भी आन्दोलन की बड़ी सरगर्मी रही। मेरठ जिले में आन्दोलनकारियों का इतना आतंक छाया था कि चौ० हरि सिंह और पृथ्वी सिंह प्रेमी को सेना ने गिरफ्तार किया। चौधरी साहब की भी सरगर्मी से तलाश हो रही थी। मेरठ के लोगों का विश्वास है कि अंग्रेजी शासन ने चौधरी साहब को देखते ही गोली से मार डालने (Shoot at sight) का आदेश पारित किया था। यह असम्भव नहीं, क्योंकि मेरठ अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी फौज की भरती का उत्तर भारत में सबसे बड़ा केन्द्र था, उन दिनों गांवों में भरती और युद्ध के खिलाफ एक नारा था—"न एक पाई—न एक भाई।" पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पहले से ही फौज में नौकरी की परम्परा थी। चौधरी साहब के निकट के रिश्तेदार भी फौज में थे। जो हो, आन्दोलन के कारण अब फौज में भर्ती के लिए जवान मिलने मुश्किल हो गये। पश्चिमी जिलों में चौधरी चरण सिंह की संगठन-शक्ति का नया रूप प्रकट हुआ। वे भूमिगत होते भी अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। बगावत के इन्हीं दिनों में चौधरी साहब दाहा गांव की सभा में भाषण कर रहे थे, कि पुलिस से आमना-सामना हो गया। पुलिस ने सभास्थल को एक प्रकार से चारों ओर से घेर लिया। परन्तु सभा की भीड़ और लोगों का उत्साह देखकर पुलिस चुपचाप खड़ी रही। चौधरी साहब भाषण समाप्त कर एक घोड़े पर चढ़ कर वहां से चलते

बने। अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखकर पुलिस ने उस समय उनका पीछा भी नहीं किया। चौधरी साहब की तलाश किन्तु बहुत तेज हो गयी। 23 या 24 अगस्त को वे गिरफ्तार कर लिये गए। और उन्हें 15 महीने के लिए राजबन्दी बना दिया गया।

सन् 1937-39 की धारा सभा में चौधरी चरण सिंह को अपने अब तक के अध्ययन और चिन्तन को किसानों की समृद्धि के लिए रूप देने का अभिनव अवसर मिला। 1937 के चुनावों में कांग्रेस ही नहीं, दूसरे राजनैतिक दलों ने भी कृषि और किसानों की दशा को बेहतर बनाने के लिए अपनी योजनाओं की घोषणा की थी। बिहार में स्वामी सहजानन्द की किसान सभा उग्र रूप धारण कर रही थी। बंगाल में श्री फजलुल हक के नेतृत्व में कृषक प्रजा पार्टी ने जमींदारों को बिना मुआवजा दिए खत्म करने का ऐलान किया था। उत्तर प्रदेश और दूसरे कांग्रेसी प्रदेशों की घोषणा में लगान को कम करने तथा कृषि की उपज बढ़ाने का कार्यक्रम था। चौधरी चरण सिंह, लेकिन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने एम० एल० ए० की हैसियत से जमींदारी समाप्त करने की योजना को ठोस और यथार्थ रूप दिया। उन्होंने कृषि पदार्थों की बिक्री के सम्बन्ध में भी एक विधेयक तैयार किया। इस विधेयक में उत्पादक किसानों को बिचौलियों, दलालों और व्यापारियों की लूटपाट से बचाने का प्राविधान था। हिन्दुस्तान टाइम्स के मार्च 31 और अप्रैल 1, 1939 के संस्करण में उनका इस विधेयक पर विशद लेख प्रकाशित हुआ। पंजाब प्रान्त में उसी आधार पर सन् 1940 में एक कानून बना दिया गया। दूसरे प्रान्तों में भी कई जगह यह कानून बनाया गया। उत्तर प्रदेश में श्री चन्द्रभान गुप्त के नेतृत्व में जमींदार और बड़े खेतिहर सदस्यों ने विधेयक में प्रस्तावित मसविदे का कड़ा विरोध किया। उनका कहना था कि किसान अब धनी और शिक्षित हो गये हैं और वे व्यापारियों का सामना करने में समर्थ हैं; उन्होंने बिल को किसानों पर अनावश्यक नियन्त्रण बताया। वे यह भूल गये कि पूर्ण विकसित और शिक्षित देशों में भी ऐसे अधिनियम बनाये गये थे। उक्त बिल सन् 1964 में चौधरी साहब के कड़े प्रयत्नों से कानून बन पाया। सन् 1939 में चौधरी साहब ने एक भूमि-उपयोग बिल (Land Utilisation Bill) भी तैयार कर धारा सभा के सदस्यों में वितरित कराया और धारा सभा में उसे प्रस्तुत करने का नोटिस दिया। उन दिनों किसी बिल को सभा में पेश करने के लिए गवर्नर की सहमति जरूरी थी। उस बिल में असामी या काश्तकारों को अपने लगान का दस गुना जमा करके अपनी जोत की जमीन पर स्वामित्त्व पाने का प्राविधान रखा गया था। मुस्लिम लीगी सदस्य तो जमींदार और बड़े खेतिहर थे ही, कांग्रेस दल में भी कुछ जमींदार और धनी-मानी सदस्य शामिल थे। तालुकदार, जमींदार और बड़ी खेती वालों को अंग्रेजी शासन ने अपनी राजभक्ति बरकरार रखने के लिए बनाया था। वे उनके पृष्ठ पोषक थे। अंग्रेज गवर्नर ऐसे प्रगतिशील बिल पर सहमति कैसे देता? अतएव यह बिल धारा सभा में पेश नहीं हो पाया। चौधरी

CCS role in the passage of various

साहब ने इस विषय पर "जिसकी करणी, उसकी भरणी" के नाम से एक विस्तृत लेख लिखा जो कई समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ । लखनऊ के कांग्रेसी दैनिक 'नेशनल हेराल्ड' में उन्होंने "जोतों के एक निश्चित न्यूनतम सीमा के उप-विभाजन पर रोकथाम" के शीर्षक से भी एक लेख लिखा । आगे चल कर उनके यही विचार अथवा सिद्धान्त जमींदारी उन्मूलन विधेयक और भूमि सुधारों के आधार बने । उग्रवादी स्वामी सहजानन्द जी की किसान सभा तथा श्री फजलुल हक की जमींदारी खत्म करने की घोषणा नारा मात्र रह गये अर्थात् कार्यरूप में परिणित न हो पाये । उधर चौधरी साहब ने अपने कुशल निर्देशन में एक जुलाई सन् 1952 में भारत भर में सबसे पहले उत्तर प्रदेश में जमींदारी खत्म करके दिखा दी । तभी से वे किसानों के मसीहा माने जाने लगे । आगे जमींदारी उन्मूलन के प्रकरण में इसकी विस्तृत समीक्षा की जाएगी ।

गांवों की उन्नति के लिए उन्हीं दिनों चौधरी साहब ने एक दूसरा क्रांतिकारी सिद्धान्त प्रतिपादित किया । गांवों की उन्नति तभी सम्भव है, जब वहां के लिए काम करने वाले कर्मचारी और उच्च अधिकारी वहां के निवासी हों और वहां की दयनीय दशा से घनिष्ट रूप से परिचित हों । धारा सभा की सन् 1939 की एक बैठक में उन्होंने प्रस्ताव रखा था कि उच्च स्तरीय प्रशासनिक कर्मचारियों में कम से कम पचास प्रतिशत खेतिहर अथवा गांवों के निवासी हों । उक्त प्रस्ताव पर विचार तक नहीं किया गया । आजादी के बाद सन् 1947 के कांग्रेस विधान मंडल में उन्होंने यह प्रस्ताव दुबारा रखा और अपने कांग्रेस दल के सदस्यों में अपने प्रस्ताव के समर्थन में एक दस पृष्ठ लम्बा लेख भी तकसीम कर दिया । परन्तु नतीजा पहले ही जैसा रहा । सन् 1961 की एक गणना के अनुसार देश भर में अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के 11.5 प्रतिशत सदस्य ही गांवों के निवासी थे । शेष नगरों के विभिन्न व्यवसायों और पेशों की पृष्ठिभूमि से आये थे । आजादी के पहले तो यह अनुपात और कम रहा होगा । परन्तु कांग्रेस पार्टी में सामन्ती सदस्यों की बहुतायत थी । वे अपने बच्चों को शक्तिशाली पदों से वंचित रखने का प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर सकते थे ? गांवों की दशा अगर आज तक अपेक्षित रूप में नहीं बदली तो अचरज क्या है ? महात्मा जी की दूरदर्शी दृष्टि अब तक कहां सार्थक हो पायी ?

धारा सभा ने सन् 1939 में, चौधरी साहब का बनाया एक ऋण निर्मोचन विधेयक जरूर पारित कर दिया । उसमें किसानों को ऋण-मुक्त होने और खेतों को नीलामी से बचाने में काफी मदद मिली । धनी-मानी कांग्रेसी विधायक यहां तक कि समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव इस बिल के भी कड़े विरोध में थे । चौधरी साहब ने नेशनल हेराल्ड में सोलह पृष्ठों का अकाट्य तर्कों पर आधारित एक अत्यन्त विश्लेषणात्मक लेख लिखा, जिसके फलस्वरूप अन्त में उस विधेयक का विरोध करने का किसी को साहस नहीं हुआ । भूमि सुधारों और जमींदारी उन्मूलन में आगे चौधरी चरण सिंह

ने जो क्रान्तिकारी काम किया, उसके चिन्तन की स्पष्ट रेखा उपर्युक्त विधेयकों में दिखायी पड़ती है। चौधरी चरण सिंह का चिन्तन नारों से नहीं बना था। वह यथार्थ रूप में परिणत हुआ जैसा दूसरे किसी का नहीं हुआ।

नवम्बर 1943 में चौधरी साहब नजरबन्दी से मुक्त होकर घर आये और आते ही कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में पहले की तरह जुट गये। युद्ध की स्थिति तेजी से पलट रही थी। अमेरिका मित्र-राष्ट्रों अर्थात् जर्मनी विरोधी देशों, का नेता बन युद्ध में उनकी ओर से कूद पड़ा था। हिटलर ने रूस के विरुद्ध अपनी बन्दूकों का रुख मोड़ कर जो गलती की थी, उसका फल उसे अब मिलने लगा था। रूस ने स्टालिन ग्राड में ऐतिहासिक मोर्चा बांध कर जर्मनी को पीछे ढकेला और उस पर प्रत्याक्रमण किया। जर्मनी और धुरी राष्ट्र अप्रत्याशित तेजी से नष्ट होने लगे। सन् 1944 में जर्मनी प्रायः नष्ट हो गया, हिटलर ने आत्महत्या कर ली और 7 मई सन् 1945 को जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया।

पूरब में जापान बर्मा को रौंद कर हिन्दुस्तान की सरहद पर आ डटा था। गांधी जी और दूसरे नेता जेलों में बन्द थे। अंग्रेजों की युद्ध में मदद करने की कोई बात बन नहीं रही थी। प्रत्युत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने एक नया मोड़ ले लिया। सिंगापुर में जनरल मोहन सिंह की जगह नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज और सरकार का नेतृत्व संभाल लिया। उन्होंने "दिल्ली चलो" का नारा दिया। आजाद हिन्द फौज जापानी सहयोग से भारत की सीमा पर उसे स्वतंत्र कराने के लिए आक्रमण करने की तैयारी में जुटी। हिन्दुस्तान में जन-जीवन त्रस्त हो गया था। हद-दर्जे की महंगाई बढ़ गयी थी। बंगाल में अभूतपूर्व अकाल पड़ा। उस अकाल में गैर-सरकारी सूत्रों के अनुसार लगभग 50 लाख लोग कालकवलित हो गये। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वह संख्या बीस लाख थी। यह सही है समूचे युद्ध में इतने लोग नहीं मरे थे। मगर ब्रिटिश सरकार को इससे कोई वास्ता नहीं था। वह बंगाल के समुद्री तट को साधनविहीन करने में लगे थे, जिससे जापानियों को यहां पहुंचने पर कोई सुविधा नहीं मिले।

आजाद हिन्द फौज जापानी सहयोग से मणीपुर-कोहिमा और अक्याब-काक्स बाजार के पूर्वी क्षेत्र में सफलतापूर्वक आ गयी थी और घमासान युद्ध हो रहा था। ऐसा लगा कि अंग्रेजी सेना ब्रह्मपुत्र नदी के उस पार के क्षेत्र असम को छोड़ कर इस पार चली आएगी। तभी अमेरिका ने जापान और उसके समुद्री प्रदेशों पर भारी आक्रमण कर दिया। जापान को अपने हवाई जहाज स्वदेश की सुरक्षा के लिए बर्मा से जापान वापस करने पड़े। इससे आजाद हिन्द फौज की रसद और सैन्य सामग्री की आपूर्ति में बड़ी बाधा पड़ी। ऊपर से समय से पहले ही भयंकर बरसात ने उन्हें तबाह किया। बिना खाद्य सामग्री और सामरिक अस्त्र-शस्त्र के आजाद हिन्द फौज के मर-मिटने की

नौबत आयी। इसी समय अमेरिकन मदद से हिन्दुस्तान में स्थित अंग्रेजों की सेना ने बर्मा पर प्रत्याक्रमण किया। आजाद हिन्द फौज की वे बटालियन्स, जो मरने से बच गयी थीं और जो थाईलैण्ड की ओर भाग नहीं सकी थी, गिरफ्तार हो गयीं। फिर भी अभी तक जापान कहीं हारा नहीं था। अमेरिका ने तब जापानी नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम का विस्फोट किया। विस्फोट के संग ही लाखों लोग मरे, लाखों विकलांग बने और ऐसा लगा कि मनुष्य जाति ही वहां मिट जाएगी। तब बौद्ध धर्म मानने वाले जापानी राष्ट्र ने मानव मात्र की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अगस्त 1945 में आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह मित्र राष्ट्र रूस और अमेरिका के कारण लड़ाई में विजयी हुए।

जर्मनी के समर्पण के बाद ही ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिल ने इंग्लैण्ड में आम चुनाव कराया। उन्हें आशा थी कि युद्ध में विजय के कारण उनकी पार्टी को बहुमत मिलेगा। हुआ उसका उल्टा। मजदूर दल भारी बहुमत में आया। मजदूर दल और चर्चिल के अनुदार दल में हिन्दुस्तान को पराधीन बनाये रखने की नीति में कोई मौलिक अन्तर नहीं था। लेकिन मजदूर दल को दुनिया की नजर में अपनी प्रगतिशीलता का भी परिचय देना था। चर्चिल ऐसे नहीं थे। चर्चिल ने 5 मार्च सन् 1945 को वाइसराय वेवल से तार द्वारा यह पूछा था कि "गांधी अब तक मरा क्यों नहीं ?" मजदूर दल के नेता मेजर एटली ने वाइसराय वेवल से वाइसराय की कौन्सिल को उत्तरदायी कार्यकारी परिषद् बनाने को कहा। मुस्लिम लीग के मिस्टर जिन्ना को फिर अड़ने का मौका मिला। जिन्ना ने कौन्सिल में हिन्दू सदस्यों के बराबर मुसलमान सदस्यों की नियुक्ति की मांग की। उन्होंने यह भी मांग की कि लीग के अलावा कोई दूसरा दल मुसलमान सदस्य को काउन्सिल में मनोनीत न करे। कांग्रेस ने इसे अस्वीकृत कर दिया। वाइसराय की कार्यकारी परिषद् नहीं बन सकी।

युद्ध को जीत कर भी इंग्लैण्ड युद्ध में हार गया था। उसकी आर्थिक स्थिति अगर चौपट नहीं तो विपन्न हो चुकी थी। उसके पास उपनिवेशों में राज-काज और सेना का काम चलाने को युवक-युवती नहीं बचे थे। उधर, हिन्दुस्तानी सेना आजाद हिन्द फौज के जोश और उत्सर्ग से अभिभूति थी। नौ-सेना और हवाई फौज ने विद्रोह भी किया। मजदूर दल की सरकार ने अमेरिका और दूसरे मित्र राष्ट्रों की सलाह पर शांतिपूर्ण ढंग से भारत से चले जाना अच्छा ही समझा। मजदूर सरकार ने तब भारतीय नेताओं से समझौता वार्ता करने के लिए ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों को भारत भेजा। उनमें सर स्टेफोर्ड क्रिप्स (Stafford Cripps) भी थे। मजदूर सरकार ने यह भी घोषणा की कि अल्पसंख्यक समुदाय को हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता में अनधिकृत व्यवधान उत्पन्न नहीं करने दिया जायेगा। इस घोषणा से देश में आजादी की नई लहर प्रभावित हुई। साथ ही मुस्लिम लीग ने भी साम्प्रदायिक भेदभाव उभारने में और

अपनी रोड़ा अटकाने वाली नीति में और अधिक जोर पकड़ा । मंत्रिमंडल मिशन ने कांग्रेस और लीग से वाइसराय की कार्यकारी परिषद् को तत्काल बनाने को कहा। लीग पुरानी शर्तों पर अड़ी रही। तब मिशन ने वाइसराय से कांग्रेस के द्वारा ही परिषद् के सदस्यों को मनोनीत करने को कहा । उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता की रूपरेखा बनाने के लिए एक संविधान सभा को तत्कालीन विधान सभाओं से चुनने की भी योजना प्रस्तुत की। कांग्रेस ने अपने मनोनीत सदस्यों से कार्यकारी परिषद् को बनाया। विधान सभाओं से संविधान सभा के चुनाव भी सम्पन्न हुए। उस चुनाव में मुस्लिम सीटों पर भारी बहुमत से लीग के उम्मीदवार ही चुने गये। और आम सीटों पर कांग्रेसी। मुस्लिम लीग ने अपनी रोड़ा अटकाने वाली नीति को व्यावहारिक रूप में चरितार्थ करने के लिए बाद में कार्यकारी परिषद् में भाग लिया।

बहुत वाद-विवाद के बाद कांग्रेस एवं लीग में कोई समझौता होते न देख कर मिशन ने भारतीय संघ के अन्तर्गत हिन्दू और मुस्लिम बहुल प्रान्तों की दो इकाई की संस्तुति की। संघ के पास केवल यातायात, सुरक्षा विभाग, विदेश विभाग तथा वित्त विभाग को केन्द्रीय सूची में ही रखा गया था। शेष सभी अधिकारों के प्रयोग में प्रांतों को स्वतंत्र सत्ता प्रदान की गयी थी। इस संघीय योजना में प्रान्तों को यह भी अधिकार दिया गया था कि बाद में वे एक इकाई से दूसरी इकाई में जा सकेंगे। कांग्रेस और लीग दोनों ने यह योजना स्वीकार कर ली। लीग ने उक्त योजना इसलिए स्वीकार की क्योंकि प्रान्तों को हिन्दू-बाहुल्य और मुस्लिम बाहुल्य इकाइयों में बांटा गया था। उन्हीं दिनों जवाहर लाल नेहरू ने बम्बई में पत्रकारों के समक्ष एक वक्तव्य दिया कि संविधान सभा को भारत की संघीय और हिन्दू तथा मुस्लिम बाहुल्य प्रान्तीय योजना को बदलने, संशोधित करने या रद्द करने का पूरा अधिकार होगा। इस वक्तव्य से मिस्टर जिन्ना को संघीय योजना से मुकर जाने का स्वर्ण अवसर मिला। उन्होंने अपनी स्वीकृति वापिस ले ली और देश के विभाजन पर जोर दिया।

ब्रिटिश मंत्रिमंडल मिशन की योजना के अन्तर्गत सन् 1946 में प्रान्तीय धारा सभाओं के नये चुनाव भी कराये गये। उसमें भी मुस्लिम सीटों पर सीमा प्रान्त को छोड़कर प्रायः हर प्रान्त में लीगी उम्मीदवारों को बहुतायत से चुना गया, मुस्लिम लीग ने अपना यह दावा कि मुसलानों के एक मात्र प्रतिनिधि वही हैं, इस तरह प्रमाणित कर दिया। मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया। केन्द्र की अन्तरिम सरकार में भी वह इस तरह काम करने लगे कि सरकार का काम ही न चल पाये।

सन् 1946 के चुनाव में भी चौधरी चरण सिंह अपने क्षेत्र से भारी बहुमत से विजयी होकर धारा सभा में आये। इसके पहले सन् 37 के चुनाव में वे देख चुके थे कि चुनाव क्षेत्र में वोटरों से सम्पर्क करने के लिए बहुत धन की जरूरत पड़ती है। उसके लिए चन्दा लेना अनिवार्य हो जाता है। सन् 1937 में श्री जी० डी० विड़ला ने

कांग्रेस चुनाव फंड में पांच लाख रुपये दिये थे। श्री आर० के० डालमिया ने बिहार के कांग्रेस के कुल धन 37000 में अकेले 27000 रुपये चन्दा दिया था। सत्ता से काला-बाजारियों, व्यापारियों के अनैतिक गठबंधन को चौधरी साहब ने तब भी स्वीकार नहीं किया था। राजनीति में पूंजीपतियों के अनैतिक तरीकों से कमाये गये धन को उन्होंने देश के दूरगामी हित के बिलकुल विरुद्ध माना। तभी से अपने चुनाव क्षेत्र में उन्होंने गरीब किसान, मजदूरों और साधारण लोगों से ही चन्दा स्वीकार किया। महात्मा गांधी के इस दृष्टिकोण को वह समझते थे कि स्वतंत्रता के संघर्ष में देश के हर वर्गों का सहयोग जरूरी है। लेकिन पूंजीपतियों की गिरफ्त में खास कर ऐसे जिनका एक पांव अंग्रेजी सरकार की ड्योढ़ी पर और दूसरा महात्मा गांधी के आश्रम में रहता था, राजनीति को थमा देना वे जनता के हित में कदापि नहीं मानते थे। तभी से पूंजी-पति वर्ग/सम्पन्न वर्ग से कभी कोई चन्दा या उपहार स्वीकार न करने की उनकी दृढ़ नीति बन गयी। फरवरी 44 में पूना के आगा खां महल में कस्तूरबा की मृत्यु हो गयी, कस्तूरबा की प्रतिष्ठा तब तक सारे देश की माता के रूप में हो चुकी थी। मेरठ में उनकी स्मृति में एक अस्पताल स्थापित करने के लिए चन्दा जमा करने की एक सर्व-दलीय "माता कस्तूरबा फंड" कमेटी बनी। मेरठ के सुप्रसिद्ध नागरिक पंडित सीता राम उसके अध्यक्ष चुने गये। कमेटी में मेरठ के दूसरे शीर्षस्थ गण्यमान्य नागरिक भी थे। कमेटी ने इस काम में अपेक्षित तत्परता नहीं दिखायी। तब चौधरी साहब को ही यह जिम्मेदारी निभानी पड़ी। उन्होंने थोड़े दिनों में ही 63000 रु० चन्दे में इकट्ठा किया। इसमें भी अपने आदर्श पर वे अडिग रहे। मोदी नगर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति प्रस्तावित कस्तूरवा अस्पताल में अपनी माता के नाम पर एक कमरा रखाने के लिए मनचाही धनराशि चन्दे में देने को तैयार थे। चौधरी साहब ने उसे सधन्यवाद अस्वीकार कर दिया। सम्पूर्ण चन्दा स्वेच्छा से केवल किसान, मजदूर और साधारण लोगों से ही स्वीकार किया गया। उसी धन से बड़ौत में माता कस्तूरबा डिस्पेंसरी चलायी गयी जो आज भी सरकारी तत्त्वावधान में चल रही है।

मजदूर सरकार अब सच्चाई से भारत की स्वतंत्रता को स्वीकार करने को तैयार थी। लड़ाई में उसे जन-धन का बड़ा नुकसान हुआ था। अमेरिका भारत की आजादी पर जोर दे रहा था। भारत की सेना भी आजादी की मांग कर रही थी। नौ सेना और हवाई सेना में इसलिए विद्रोह भड़क चुका था। मुस्लिम लीग की रोड़े अट-काने वाली नीति से ब्रिटिश सरकार भी बहुत निराश हुई। तब उसने घोषणा की कि अंग्रेजी सरकार 15 जून सन् 1948 के पहले हिन्दुस्तान को जिसे या जिनको वे चाहें, उसे या उनको दे कर यहां से चले जाएंगे। विनाशकारी सम्भावना थी। इससे अंग्रेजों से हुई संधि की शर्तों के अनुसार हर देशी रियासत स्वतंत्र हो जाती। इसी तरह देश खंड-खंड बंट जाता। कांग्रेस पार्टी के लिए ब्रिटिश हुकूमत की इस घोषणा ने एक

भारी संकट पैदा कर दिया। महात्मा गांधी ने कुछ दिनों पहले ही साफ-साफ कहा था कि उनकी देह का विभाजन करके ही देश का बंटवारा हो सकता है। राष्ट्रीय कांग्रेस विवश होकर मुस्लिम लीग की विभाजन की मांग पर गम्भीरता से सोचने लगी।

इस वातावरण में मुस्लिम लीग ने देश के विभाजन की मांग को स्वीकृत कराने के लिए हिन्दुओं के खिलाफ सीधी कार्यवाही की घोषणा की। 16 अगस्त सन् 1945 को बंगाल की लीगी सरकार के सहयोग से कलकत्ता में अभूतपूर्व हत्याकांड प्रारम्भ हो गया, जो दूसरे नगरों में फैला। कुछ दिनों बाद नोआखाली में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण किया। उसकी प्रतिक्रिया बिहार में हुई। उन्हीं दिनों गढ़मुक्तेश्वर के मेले में आये हुए तीर्थयात्रियों ने मुसलमानों पर आक्रमण किया। चौधरी चरण सिंह और उनके सहयोगी मेरठ में ऐसा होते देख दहल उठे। उन्होंने साहस और निर्भीकता से मुसलमानों की रक्षा की और पास-पड़ोस के गांवों में शान्ति स्थापित कर हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द स्थापित किया।

इन्हीं दिनों 25 मई से 4 जून सन् 1946 तक प्रान्तीय धारा सभा में मुस्लिम लीगी सदस्यों ने पाकिस्तान की मांग के समर्थन में पानीपत की चौथी लड़ाई की चुनौती तीखे शब्दों में दी। उन्होंने ओछी बात कही कि "हमने हिन्दुस्तान पर आठ सौ साल राज्य किया।" लीगी सदस्यों के भाषण सबको बुरे लगे। किन्तु सभी मौन बने रहे। चौधरी चरण सिंह से नहीं रहा गया। उन्होंने जवाबी भाषण में कहा कि हिन्दुस्तान के बहुसंख्यक मुसलमान मुसलमानी शासन काल में धर्म परिवर्तन से मुसलमान बने हैं। वे इसी धरती से पैदा हुए हैं, उन्होंने नहीं, बल्कि विदेशी, तुर्की, खिलजी और मुगलों ने इस देश पर शासन किया। हिन्दू से बने मुसलमानों को इन विदेशियों ने अपने राज्य या दरबार में किसी ऊंचे पद पर नहीं रखा। यह मुसलमान उसी तरह पीड़ित और गुलाम रहे, जैसे हिन्दू और दूसरी जातियां। बात सच है। हिन्दू से बने मुसलमानों की वह दलील ऐसी ही थी, जैसे हिन्दुस्तानी, ईसाइयों की हो अगर वे यह दावा करें कि हिन्दुस्तान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से आजादी के दिन तक उन्होंने शासन किया।

जो हो, राष्ट्रीय कांग्रेस ने अन्ततः देश को खंड-खंड होने से बचाने के लिए पाकिस्तान की मांग को स्वीकार कर लिया। चौधरी साहब उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। आज के दिल्ली स्थित रामजस कालेज (तब स्कूल) के प्रांगण में अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक हुई। उसमें विभाजन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। केवल 58 सदस्यों ने प्रस्ताव के विरुद्ध में वोट दिया था, जिनमें स्वर्गीय पुरुषोत्तम दास जी टंडन और चौधरी चरण सिंह प्रमुख थे।

15 अगस्त को आजादी आयी। सारे हिन्दुस्तान में अपार खुशी मनाई गई। चौधरी चरण सिंह के मेरठ में भी स्वतंत्रता का महोत्सव विपुल गरिमा से मनाया

गया। चौधरी साहब का हृदय मगर भरा रहा। उन्हें याद है कि उत्सव में उनका दिल बिलख रहा था और आंखें सजल थीं। आज तो उत्तर प्रदेश के कुछ मुसलमान भी, दो राष्ट्र के सिद्धान्त और विभाजन की निन्दा करते हैं, चौधरी साहब ने तभी कहा था कि एक ही वंश-वृक्ष के भिन्न धर्मावलम्बी भाइयों का विभाजन दोनों देशों को हमेशा संतप्त रखेगा।

स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में

(सन् 1947 से 1966)

सन् 1937 की धारा सभा और उसके बाद के किसानों के उत्थान के लिए प्रयत्नों तथा मेरठ क्षेत्र में कांग्रेस के सुदृढ़ संगठन और सार्वजनिक सेवा से सन् 1946 के चुनावों के बाद बने प्रान्त के अन्तरिम मन्त्रिमंडल में चौधरी चरण सिंह की प्रतिभा को अनदेखा नहीं किया जा सका। फिर भी उन्हें पूर्ण सक्षम मंत्री नहीं बनाया गया। उन्हें केवल माल विभाग का सचिव नियुक्त किया गया। 15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और नया संविधान लागू हो गया। उत्तर प्रदेश का मंत्रिपरिषद् पूर्ण सक्षम मन्त्रिमंडल बना। चौधरी चरण सिंह तब भी मंत्री नहीं बनाये गये। क्योंकि तब कांग्रेस विधायक दल में स्वतंत्रता संग्राम के वरिष्ठ सेनानी मौजूद थे। साथ ही कांग्रेस में तब तक धनपतियों और बड़े जमींदारों का ही प्रभाव था। वे चरण सिंह जैसे प्रगतिशील विचारों के धरती के लाल को पूरा अधिकार कब सौंपते ? वे सभा सचिव ही रहे। पहले वे माल विभाग में थे। अब उन्हें स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य विभाग में बदल दिया गया। वे स्वास्थ्य विभाग के स्वतंत्र चार्ज में रखे गये। इस तरह इस विभाग के काम में उन्हें मंत्री का पूरा अधिकार दिया गया। सितम्बर 1947 से मई 1948 तक ही वे इन विभागों में रह पाये। 1948 में मुख्यमंत्री स्वर्गीय गोविन्द वल्लभ पंत ने उन्हें अपना सभा सचिव नियुक्त किया। इस बार उन्हें न्याय और सूचना विभाग सौंपा गया। सूचना विभाग के वे स्वतंत्र चार्ज में रखे गये।

अगस्त 1947 के पहले से ही देश के बंटवारे की विनाश लीला प्रारम्भ हो गई थी। पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान में हिन्दू और सिख लूटे-मारे जा रहे थे। पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के साथ ऐसा ही हो रहा था। दोनों ओर से शरणार्थी ट्रेनें खून से लथ-पथ बंटवारे की सीमा को पार करती थीं। कई ट्रेनों में केवल मुर्दा लाशें ही आयीं। मिस्टर जिन्ना की बनायी हुई दो राष्ट्र वाली नीति का नतीजा हिन्दू-मुस्लिम परिवारों के इधर से उधर आने-जाने तथा अभूतपूर्व मार-काट के रूप में प्रत्यक्ष आ गया। अंग्रेज अधिकारियों को इस होलिका दाह में आहुति डालनी ही था। वे दुनिया को दिखाना चाहते थे कि उनकी बात कि हिन्दू और मुसलमान कभी साथ नहीं रह सकते, कितनी सच थी। पाकिस्तान बनने के बाद मिस्टर जिन्ना ने कश्मीर को हड़पने के लिए कबीले हत्यारों को आगे भेज कर पीछे से पाकिस्तानी सेना द्वारा कश्मीर पर

आक्रमण कर दिया। कहा गया है कि स्वतंत्रता की देवी रक्त मांगती है। इधर मार-धाड़ और उधर कश्मीर पर हमला, इन दोहरी विकट परिस्थितियों से अनबंटे हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना पड़ा। उन प्रतिकूल और भीषण परिस्थितियों में देश की रेलगाड़ी पटरी पर चलाये रखना ही कम सराहनीय नहीं था। चौधरी चरण सिंह ने बंटवारे का विरोध किया था और जवाहर लाल नेहरू से स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले कहा था कि श्री जिन्ना पाकिस्तानी फौज से कश्मीर पर हमला करेंगे। नेहरू ने उनकी बात की गम्भीरता पर शायद उतना ध्यान नहीं दिया था, जितना देना चाहिए था। अन्यथा कश्मीर के महाराजा हिन्दुस्तान में पहले ही सम्मिलित हो जाते। पाकिस्तानी आक्रमण जब श्रीनगर के पास पहुंच गया, तब महाराजा ने हिन्दुस्तान में अपने राज्य के विलय की घोषणा की, जिससे हिन्दुस्तानी सेना उनके बचाव में रातोंरात हवाई जहाज से श्रीनगर पहुंच गयी। हिन्दुस्तानी जवानों के सामने पाकिस्तानी आक्रमणकारी भागे। दो-चार दिन में वे श्रीनगर से अपनी सीमा के पास वापिस पहुंच गये। वे सीमा पार कर गये होते, अगर श्री नेहरू सेनापतियों की सलाह को अमान्य कर युद्ध-विराम की घोषणा न कर देते। कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के सवाल को वे राष्ट्रसंघ में ले गये, जिस छोटे हिस्से को खाली कराये बिना असमय में युद्ध विराम स्वीकार कर लिया गया, वह आज भी पाकिस्तान के अनधिकृत अधिकार में है। राष्ट्रसंघ ने भी आज तक इस पर कोई निर्णय नहीं दिया है। नेहरू स्वतंत्र हिन्दुस्तान के पहले प्रधानमंत्री होने के कारण देश पर छाए थे। महात्मा गांधी पाकिस्तान को दूसरा देश मानते ही नहीं थे। बंटवारा जो हुआ था, वह उनके लिए भाई-भाई का आपसी बंटवारा था। इसलिए नेहरू को कहीं से रोक नहीं मिली। सारा देश कश्मीर के एक हिस्से पर पाकिस्तान का अधिकार रह जाने से दुखी हुआ। चौधरी चरण सिंह भी बहुत दुखी हुए, क्योंकि उनकी समय से दी गयी सलाह पर नेहरू अगर समुचित ध्यान देते तो यह स्थिति नहीं आती। देश में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता कश्मीर के कारण भी अभी शेष है। कश्मीर का एक वर्ग पाकिस्तान का पक्षधर है, जिसका प्रभाव सारे देश पर पड़ता है।

देश के विभाजन और कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण से चौधरी चरण सिंह की आंखों में हिन्दुस्तान के इतिहास का अतीत आ झलका। जाति-पांति ने देश को सदा कितना निर्बल बना कर रखा ! उन्होंने सभा सचिव होते हुए भी हिन्दुस्तान को शक्तिशाली बनाने के लिए 1947 में राज्य के शासन से एक महत्त्वपूर्ण काम कराया। उन्होंने उत्तर प्रदेश में यह आदेश निर्गत कराया कि माल के अभिलेखों में नाम के संग हरिजनों के अतिरिक्त किसी की जाति की संज्ञा नहीं लिखी जाय। जाति-पांति मिटाने का देश भर में यह पहला शासकीय प्रयास था। स्वदेश को बलवान बनाने के लिए जाति-पांति को मिटाने का श्रीगणेश कभी तो करना ही था। उस विषय पर उन्होंने

22 मई सन् 1954 को तत्कालीन प्रधानमंत्री को एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा। उसमें राजपत्रित पदों (परिशिष्ट-अ) के अभ्यर्थियों के लिए अन्तरजातीय विवाह करने को आवश्यकीय योग्यता में रखने की संस्तुति की। इस पर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया। सन्दर्भित पत्र दूरगामी महत्त्व का है और जाति-पांति की प्रथा को जल्दी से जल्दी तोड़ने का उसमें प्रस्ताव है।

सभा सचिव के नाते उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण काम भूमि सुधारों और कृषि विकास से सम्बन्धित है। भूमि-सुधार-मैनुअल में यह धारा बढ़ाई गई कि सार्वजनिक कामों के लिए जोत तभी अधिग्रहण की जायेगी, जब उसके आधे मील के अन्दर बन्जर या ऊसर भूमि प्रस्तावित निर्माण या कार्य के लिए उपलब्ध न हो। देखने में यह बहुत सरल और छोटा काम है, मगर उनके पहले भारत में इसे किसी ने सम्पन्न नहीं किया था। इससे हजारों किसानों को लाभ हुआ। आज़ादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा विकास के कार्यों में गतिशीलता अवश्यम्भावी थी। खेती की पैदावार और किसानों तथा मजदूरों की आमदनी को बढ़ाने का यह साधन आगे चल कर प्रभावी साबित हुआ।

चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्व की छाप सभा सचिव के रूप में प्रशासनिक और राजनैतिक भ्रष्टाचार पर भी शीघ्र ही पड़ने लगी। उनके विभागों के ही नहीं, दूसरे विभागों के लोग भी पहले से अधिक सतर्क रहने लगे। कांग्रेस जन स्वतन्त्रता संघर्ष के दिनों से महात्मा गांधी के नेतृत्व में ईमानदारी के साथ-साथ चारित्रिक नैतिकता पर भी अत्यन्त सावधान रहते थे। व्यक्ति के अन्तर और बाहर की पवित्रता से ही सेवा फलती-फूलती है। आजादी से पहले महात्मा जी के नेतृत्व में, इस पर अत्यधिक बल भी दिया जाता था। दुर्भाग्य से स्वतन्त्रता के बाद सत्ता की शक्ति का अनुभव कर कुछ उच्च पदस्थ राजनीतिज्ञ इस तरह उबले जैसे छोटी नदी बरसात की छिछली बाढ़ से उतरा आती है। बुलन्दशहर जिले के रामगढ़ रियासत को कोर्ट ऑफ वार्ड से बरी करने में उन्हें उच्च स्तर के भ्रष्टाचार की गंध मिली। सवाल को उन्होंने जोरदार रूप से उठाया, यहां तक कि अपना त्यागपत्र भी लिखकर मुख्यमंत्री के पास भेज दिया। पंत जी ने त्यागपत्र वापस करा दिया, लेकिन चौधरी चरण सिंह का असली रूप सबकी आंखों में छा ही नहीं गया, संबन्धित मंत्री और दूसरे मन्त्रियों को खटकने लगा।

सभा सचिव को वही काम मिलता था, जो मंत्री उसके पास भेजे। रामगढ़ की घटना के बाद चौधरी साहब को महत्त्व का काम मिलना बन्द हो गया, क्रमशः काम ही मिलना बन्द हो गया। उन्होंने अगस्त 48 में पहली बार और मार्च 50 में दूसरी बार इसी आधार पर अपना त्यागपत्र भेजा। मुख्यमंत्री पंत जी ने किसी भाव उनका इस्तीफा स्वीकार नहीं किया, लेकिन जिस तत्परता और निपुणता से चौधरी

चरण सिंह काम का निस्तारण कर सकते थे, वह वातावरण उन्हें फिर भी नहीं मिला। पंत जी जानेमाने नेता थे और देश के शीर्षस्थ देशभक्तों में उनकी गणना होती थी। वे ख्याति प्राप्त वकील रह चुके थे और कुशल प्रशासक थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे विभिन्न तथा परस्पर विरोधी मत-मतान्तरों का टकराव आसानी से बचा ले जाते थे। चौधरी साहब की प्रखर प्रतिभा को वे स्वीकार करते थे और उनकी दक्षता तथा लगन को वे अनदेखा नहीं करना चाहते थे। सन 50-51 में पंत जी ने चौधरी चरण सिंह को उनकी प्रतिभा के अनुकूल जमींदारी उन्मूलन का विधेयक तैयार करने की जिम्मेदारी दी। यह किसान के बेटे का मनपसंद काम था। भूमि सुधार का क्षेत्र चौधरी साहब के हृदय से जुड़ा था। राज्य में सदियों की सामंतशाही के साथ जमींदारी उन्मूलन का काम साधारण प्रतिभा का काम नहीं था। सामंतशाही ऐश्वर्य, वैभव और अधिनायकवाद से गहरी जड़ें जमा लेती है। चौधरी साहब ने दिन रात मेहनत करके और विधेयक के एक-एक अंश और अक्षर-अक्षर पर पूरा विचार-मनन करके उसके मसविदे को तैयार किया। यह कड़ी मेहनत का ही नहीं, देश के अस्सी प्रतिशत असली उत्पादकों के भविष्य के सही दृष्टि से संचालन का काम था। मंत्रिमंडल के सामन्ती सदस्य विधेयक में प्रस्तावित कितनी धाराओं से सन्तुष्ट नहीं रहे, लेकिन मुख्य मंत्री पंत जी ने चौधरी साहब के कठोर परिश्रम और उद्देश्यों को सराहा। विधेयक विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत हुआ, मूल रूप में पारित हो कानून बना। उत्तर प्रदेश का यह विधेयक देश में इस प्रकार का पहला विधेयक था। वह दूसरे राज्यों के लिए आदर्श बना। इसका यह कारण था कि भूमि-सुधारों से संबन्धित विभिन्न कानूनों की बारीकियों और उनके दीर्घ तथा लघु कालीन परिणामों से चौधरी साहब अपने गहन अध्ययन और अनुभव से पूरी तरह अवगत थे। इनका विस्तृत विवरण जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि-सुधारों के कानून और अधिनियमों में प्राप्त है। यहां इतना ही उल्लेख पर्याप्त है कि चौधरी साहब के बनाये हुए जमींदारी उन्मूलन कानून की किसी धारा या अधिनियम को न्यायपालिका ने रद्द नहीं किया।

उत्तर प्रदेश में एक जुलाई 1952 को जमींदारी की प्रथा समाप्त हुई। वह दिन हिन्दुस्तान के किसान वर्ग तथा खेतिहर मजदूरों और भूमिहीन ग्रामीणों के लिए महान क्रान्तिकारी दिवस बना। जोत वाले किसानों को दसगुणा जमा का अपनी भूमि पर भूमिधारी का पूर्ण स्वामित्व मिला। काश्तकारों, खेतिहर मजदूरों को सीरदारी का हक मिला और दूसरे भूमिहीनों को जो शिकमी बंटाई आदि पर खेती करते थे, अधिवासी का अधिकार मिला। इस कानून का मूल सिद्धान्त था—'जिसकी करनी, उसकी भरनी' —'जिसकी जोत, उसकी धरती।' उक्त कानून से किसान वर्ग तथा खेती में काम करने वाले सभी मजदूरों को युगान्तकारी लाभ पहुंचा। खेतों को जोतने वाले असली किसान अपनी जोत की भूमि के सदियों बाद पहली बार पूरे मालिक बने। साथ ही ऐसे मालिक

बने, जिसे कोई बेदखल नहीं करा सकता था। सन् 54 में विधेयक का संशोधन करके अधिवासियों को पूरा सीरदार बना दिया गया। आज अगर किसानों का आत्मबल विकसित है और उनकी दशा पहले से बेहतर है, तो यह उसी शुभ प्रयत्न का परिणाम है। उत्तर प्रदेश की हरित क्रान्ति का बीजारोपण भी तभी से कहा जा सकता है। क्योंकि अपनी भूमि पर एक किसान जी-तोड़ मेहनत कर बालू को भी सोना बना लेता है।

सारे देश ने स्वीकार किया कि उत्तर प्रदेश का जमींदारी उन्मूलन विधेयक हर कानूनी दृष्टि से स्वयं में परिपूर्ण था। चौधरी चरण सिंह ने इसके हर पहलू को रेडियो से, समाचार पत्रों में लिखकर तथा दूर-दूर के ग्रामीण अंचलों में सैकड़ों सभाओं में भाषण देकर जमींदारी उन्मूलन की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक किसानों को समझाया। इससे बड़ी आसानी और शान्ति से इतनी बड़ी क्रान्ति सम्भव हुई, जिसने गांवों के जीवन को आमूल परिवर्तित कर दिया। जिस किसी या वर्ग ने अगर वर्ग-संघर्ष या दूसरे प्रकार की अशान्ति की आशा की थी, उसे आश्चर्य से चकित हो जाना पड़ा। जापान में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जमींदारों ने स्वेच्छा से अपनी तालुकदारियों को सरकार को सुपुर्द कर दिया था। ऐसा उन्होंने देश की समुन्नति के लिए देशभक्ति की प्रेरणा से किया था। रूस में जमींदारी के साथ-साथ जमींदारों का भी उन्मूलन करना पड़ा। यूरोपीय देशों जैसे : आयरलैण्ड, डेनमार्क, जर्मनी, रूमानिया आदि में कानून द्वारा जमींदारी का उन्मूलन किया गया और जमींदारों को मुआवजा दिया गया। इन्हीं देशों की तरह उत्तर प्रदेश का जमींदारी उन्मूलन विधेयक बना। उसमें भी जमींदारों को मुआवजा दिया गया। समाजवादियों ने मुआवजा देने पर बड़ी आपत्ति की। उन्होंने "भारत छोड़ो" आन्दोलन के विषय में महात्मा गांधी की उक्ति कि किसान जमींदारों की जमीन छीन ले, का उल्लेख किया। यह बात गांधी जी ने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ सम्पूर्ण विद्रोह के सिलसिले में कही थी। भूतपूर्व जमींदारों को अंग्रेजों ने बनाया था और वे अंग्रेजों के पृष्ठपोषक थे। सन् 1946 में जब कांग्रेस का चुनाव घोषणा पत्र तैयार किया जा रहा था, तब गांधी जी ने भी मुआवजा देने की संस्तुति की थी। चौधरी चरण सिंह ने गांधी जी का सच्चाई से अनुसरण किया। इतने बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन को इतनी सरलता से सम्पन्न कर लेने की अपनी अद्भुत क्षमता से पहली बार चौधरी चरण सिंह मात्र सभा सचिव होते हुए अखिल भारतीय स्तर के क्रान्तिकारी चिन्तक और पेशवा के रूप में माने जाने लगे। जमींदारी उन्मूलन विधेयक का अदालतों में उतना विरोध नहीं हुआ, जितना हो सकता था और वर्ग-द्वेष भी नहीं पनपा। सरकारों ने, जमींदारों ने, कानूनविदों ने और सदियों के शोषित किसानों और संगठनों ने इस विधेयक का गहरा अध्ययन कर अपने-अपने राज्यों में इसे तत्काल लागू करने की मांग की। अधिकांश दूसरे राज्यों में उत्तर प्रदेश के विधेयक का

ही अनुसरण किया गया । उसमें कोई नयी बात जोड़ना सम्भव ही नहीं था । इस तरह चौधरी चरण सिंह के जमींदारी उन्मूलन विधेयक ने देश के सभी राज्यों का ही इस विषय में नेतृत्व किया ।

जमींदारी उन्मूलन विधेयक की धारा 9 में सभी निवासियों को उनकी आबादी की जमीन तथा कुंओं और पेड़ों पर पूर्ण स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया गया । इससे भूमिहीन हरिजनों को सबसे अधिक लाभ हुआ । उन्हें बेगार आदि किस्म की दासता से राहत भी मिली जो जमींदार उनसे आबादी की भूमि की एवज में लिया करते थे ।

जमींदारी उन्मूलन तथा तत्सम्बन्धी भूमि सुधारों के बारे में अमेरिकन कृषि विशेषज्ञ श्री वूल्फ लाजिन्सकी का मत, "व्यक्तित्व और विचार" प्रकरण में उद्धृत किया जा चुका है । हिन्दुस्तान के योजना आयोग को अपनी एक रिपोर्ट में उन्होंने जोर देकर लिखा था कि केवल उत्तर प्रदेश का विधेयक स्वयं में सर्वांग परिपूर्ण था और उसे सही ढंग से कार्यान्वित किया गया । उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि लाखों शिकमी काश्तकार अपनी जोत की जमीनों के मालिक बने और उन्हें बेदखली का भय नहीं रहा । उक्त उच्च कोटि की क्षमता का एकमात्र श्रेय विधेयक के जनक चौधरी चरण सिंह को ही मिलता है जिन्हें खेती का घनिष्ट अनुभव था और जिनका दृष्टव्य इस विषय में किताबी न होते हुए बिल्कुल स्पष्ट था । भारत में दूसरे राज्यों के बाद के पारित विधेयक उस कोटि के नहीं बने, जैसा उत्तर प्रदेश का था । यहां तक कि केरल की कम्युनिस्ट सरकार भी उसकी समता नहीं कर सकी । केरल की सरकार ने जो विधेयक पारित किया था, उसमें जमींदारी का उन्मूलन शत-प्रतिशत नहीं था । उसमें भूमिहीनों को कीमत लेकर अतिरिक्त भूमि बांटी गयी । उत्तर प्रदेश की तरह परती, बंजर और लावारिस जमीनें सामूहिक उपयोग के लिए गांव सभाओं को नहीं दी गयी । उत्तर प्रदेश का विधेयक इस मामले में कहीं अधिक लोक कल्याणकारी और प्रगतिशील था । यही नहीं, सन् 1954 में योजना आयोग ने यह आदेश दिया कि जिन जमींदारों के पास सीर या खुदकाश्त की जमीनें नहीं है, उन्हें 30 से 60 एकड़ तक भूमि किसानों से वापिस लेने का अधिकार दिया जाय । सभी राज्यों ने तत्काल ऐसा किया । उत्तर प्रदेश में भूतपूर्व जमींदारों की इस मांग का घोर समर्थन करने पर भी चौधरी साहब ने यह स्वीकार नहीं होने दिया । यह ध्यान में रखने की बात है कि तब कांग्रेस विधायकों में काफी संख्या में आभिजात्य वर्ग के भूतपूर्व जमींदार और श्रीमान् थे ।

स्वतंत्र भारत का पहला चुनाव सन् 1951-52 में हुआ । कांग्रेस उसमें भारी बहुमत से जीती । पंत जी के नेतृत्व में नया मन्त्रिमण्डल जून 51 में बना । इस बार पंत जी ने चौधरी चरण सिंह को न्याय और सूचना मंत्री नियुक्त किया । इस नियुक्ति पर उस समय के सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने हर्षातिरेक का प्रदर्शन किया और एक यशस्वी धरती के लाल को मन्त्री बनाने के लिए पंत जी का हार्दिक अभिनन्दन किया ।

कई प्रमुख पत्रों ने यह भविष्यवाणी की कि किसानों का यह पेशवा उनकी गरीबी को मिटा कर सदियों बाद गांव के निवासियों को सुखी और सम्पन्न तथा हिन्दुस्तान को शक्तिशाली राष्ट्र बनाने में समर्थ हो सकेगा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर पंत जी ने चौधरी चरण सिंह को सितम्बर में कृषि मन्त्री बना दिया। इस नियुक्ति का यह भी कारण था कि जमींदारी उन्मूलन का काम राज्य में विधेयक के सिद्धान्तों के अनुरूप तेजी से नहीं चल रहा था। चौधरी साहब को अपने व्यक्तिगत निर्देशन में उसे कार्यान्वित कराना पड़ा। पंत जी ने मई 1952 में चौधरी चरण सिंह को माल विभाग भी सौंप दिया। माल और कृषि मन्त्री बनते ही चौधरी साहब ने जमींदारी उन्मूलन को तेजी से राज्य भर में कार्यान्वित कराया, जिससे किसानों और खेतिहर मजदूरों को विधेयक का यथार्थ रूप समझ में आया। वे चौधरी चरण सिंह पर न्योछावर हो गये। चौधरी साहब का प्रदेश भर में जहां-जहां वे गये, भव्य स्वागत हुआ। वसंत की पहली बयार के स्पर्श से जैसे पतझड़ भागने लगता है और सूखें पेड़ों पर नयी कोपलें उग आती हैं, वैसे ही जमींदारी उन्मूलन से शोषित किसानों और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के बुझे हुए चेहरों पर प्रसन्नता की रेखाएं उभरने लगीं।

भूतपूर्व जमींदार चुप बैठने वाले लोग नहीं थे। योजना आयोग को अपने पक्ष में देख कर उन्होंने एक दूसरा संघर्ष खड़ा कर दिया। जमींदारी की समाप्ति से सामंती जमींदार ही नहीं चिढ़े थे, उनके आश्रित पटवारियों में भी बड़ा रोष था। उनके द्वारा गरीब किसानों के शोषण और उत्पीड़न के सारे अधिकार कम ही नहीं होते जा रहे थे, मिट रहे थे। जमींदार सामन्तों के उकसाने पर पटवारियों ने आन्दोलन करने के लिए अपनी कतिपय मांगें सरकार को प्रस्तुत कीं। वे मांगे अभी विचाराधीन ही थीं कि उन्होंने मांगों के समर्थन में इस्तीफा दे दिया। माल विभाग के अभिलेख पूरे शासन तंत्र के आधार थे। पटवारियों को जिनकी संख्या 27000 थी, आशा थी कि राज्य के काम में रुकावट पैदा करने से सरकार उनके सामने झुक जाएगी। साधारण स्तर का मन्त्री ऐसी विकट परिस्थिति से घबरा कर झुक भी जाता। चौधरी चरण सिंह ने किन्तु अद्भुत साहस का परिचय दिया। उन्होंने सारे इस्तीफे पलक मारते स्वीकार कर लिए। पटवारियों की शोषण और भ्रष्टाचार की वृत्ति से किसान ही नहीं, सभी सर्वसाधारण परेशान रहा करते थे। चौधरी साहब के साहसिक कदम की सर्वत्र सराहना हुई। उन्होंने तत्परता से भूमि व्यवस्था और राजतंत्र के दूसरे अभिलेख सम्बन्धी सरकारी कामों को सुचारू रूप से चलाने के लिए पटवारियों की जगह लेखपालों का पद सृजन किया। लेखपालों को पंचायतों की सहमति और देखरेख में अपने दायित्व को निभाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। चौधरी चरण सिंह जैसे सुविज्ञ और किसानों के दुःख से सुपरिचित मन्त्री की ही जीवट का यह महान कार्य था। नये लेखपालों में उन्होंने पहली बार 18 प्रतिशत हरिजन अभ्यर्थियों को नियुक्त करने का हुक्म दिया। इस अनुपात में

उपयुक्त योग्यता के अभ्यर्थी मिले नहीं । फिर भी पांच प्रतिशत हरिजन योग्य अभ्यर्थी लेखपाल नियुक्त किए गए ।

जमींदारी उन्मूलन का कृषि उत्पादन पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना पड़ा । इसका मुख्य कारण उत्तर प्रदेश का चकबन्दी कानून बना, जो सन् 1953 में पारित हुआ और सन् 1954 में लागू किया गया । धरती के मोह के कारण चकबन्दी योजना का पहले उतना व्यापक स्वागत नहीं हुआ, जितना होता । लेकिन जब अलग-अलग जगहों पर स्थित खेत एक चक में लाये जाने लगे और निरर्थक मेड़ें समाप्त होने लगीं, तब इस कानून का हार्दिक स्वागत हुआ । इस योजना के कार्यान्वियन के लिए हर जिले पर एक सलाहकार समिति बनायी गयी । प्रत्येक गांव में भी वैसी ही एक कमेटी बनायी गयी, जिसकी राय को चकबन्दी के हर कदम पर चकबन्दी कर्मचारियों के लिए आवश्यक कर दिया गया । इस तरह यह योजना कृषि उत्पादन के लिए, हजार कठिनाइयों के बाद भी, बड़ी उपयोगी साबित हुई । अमेरिकन कृषि विशेषज्ञ श्री अलबर्ट मायर ने जो उत्तर प्रदेश के कृषि विकास के सलाहकार थे, उन्नाव में इस योजना के कार्यान्वियन की जांच कर निम्न टिप्पणी शासन को भेजी :

"चकबन्दी के काम को गांवों में देखकर मुझे ऐसा लगा कि यह अत्यन्त महत्त्व का काम गांवों के कृषि उत्पादन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लायेगा ।"

चकबन्दी योजना से किसानों की अपनी भूमिधरी और सीरदारी की जमीनों से सदियों के शोषण से पनाह मिली । अब वे अपनी जोतों से जितनी चाहें, फसलें उगा कर अपनी माली हालत सुधारने के लिए स्वतंत्र थे । इस तरह उनका सदियों का शोषण समाप्त हुआ । चौधरी चरण सिंह को उन्होंने मुक्त कंठ से अपना पेशवा माना । किसानों, खेतिहर मजदूरों और भूमिहीनों को उनका प्राप्य दिलाने की जागरूकता ने चौधरी चरण सिंह को भारत भर के किसानों का गौरव बना दिया । उन्हें महात्मा गांधी की उक्ति याद आई कि भारत का भविष्य कोई किसान मजदूर ही समुज्ज्वल बना सकेगा, क्योंकि गांवों में देश की अस्सी प्रतिशत आबादी बसती है । कृषि प्रधान देश में किसान के बेटे के अलावा कौन किसानों का भला कर सकेगा ? यहीं से चौधरी चरण सिंह की गांधीवादी अर्थनीति का चिन्तनशील विकास भी प्रारम्भ होता है, जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपनी अर्थशास्त्र की अनमोल पुस्तकें लिखीं, जिसकी अब तक की अंतिम कड़ी "भारत की भयावह आर्थिक परिस्थिति" (नाइटमेयर ऑफ इण्डियन इकोनामी) है ।

दिसम्बर सन् 1954 में सरदार वल्लभ भाई पटेल का देहान्त हो गया । पंडित गोविन्द वल्लभ पंत सरदार की जगह केन्द्रीय सरकार में दिल्ली बुला लिए गये । उत्तर प्रदेश में डॉक्टर सम्पूर्णानन्द उनकी जगह मुख्य मन्त्री बने । वे समाजवादी विद्वान और विचारक थे और चौधरी चरण सिंह के किसानों की सर्वांगीण उन्नति के विचारों की

गांधीवादी धारणा से अपरिचित नहीं थे। लेकिन इसे दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि उनमें और चौधरी चरण सिंह में वैसा सामंजस्य, जो राज्य के चतुर्दिक विकास के लिए जरूरी था, स्थापित नहीं हो पाया। उन्होंने कार्यभार सम्हालते ही कृषि विभाग की जगह चौधरी चरण सिंह को परिवहन विभाग, उनकी इच्छा के खिलाफ सौंपा। उन्हें माल मन्त्री बने रहने दिया गया। अप्रैल 58 में उन्हें परिवहन के स्थान पर वित्त विभाग दिया गया। उसी साल नवम्बर में वित्त की जगह उन्हें सिंचाई और बिजली विभाग सौंपा गया। ऐसी आपाधापी में चौधरी साहब ने अप्रैल 1959 में त्यागपत्र दे दिया। तत्कालीन राज्यपाल श्री वी० वी० गिरि जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, चौधरी साहब जैसे मेधावी और कर्मठ मन्त्री के त्यायपत्र को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। उन्हें त्यागपत्र स्वीकार करना पड़ा। डॉक्टर सम्पूर्णानन्द और चौधरी चरण सिंह के व्यक्तित्वों के टकराव के अतिरिक्त इसका प्रमुख किन्तु अप्रकट कारण जून 1959 के नागपुर कांग्रेस के अधिवेशन में चौधरी साहब द्वारा प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित सहकारी खेती के प्रस्ताव का सटीक विरोध था। सहकारी खेती में किसान की प्रयत्न की व्यक्तिगत रुचि कुंठित हो जाएगी, उत्पादन घट जाएगा, अपनी छोटी भूमि से भी प्रयत्न द्वारा वह बालू को सोना में बदल देगा, यह उनके विरोध का आधार था। प्रधानमन्त्री का प्रस्ताव उक्त सटीक विरोध के बाद भी स्वीकृत हुआ। लेकिन चौधरी चरण सिंह के सारगर्भित विरोध के कारण वह प्रस्ताव आज तक लागू नहीं किया जा सका। सच्ची बात बुरी लगती ही है। तब नेहरू की तूती बोलती थी। उनका विरोध करना असाधारण व्यक्तित्व व प्रचुर ज्ञान वाले का ही काम था। नागपुर कांग्रेस में कृषि से संबंधित अधिकांश प्रतिनिधि सहकारी खेती की योजना के विरुद्ध थे। नेहरू की अतुल शक्ति के सामने किसी को उसका विरोध करने का साहस नहीं हुआ। चौधरी चरण सिंह ने अपनी आस्थाओं के मुताबिक निर्भीकता से उसका विरोध किया। उनके साहस की सर्वत्र सराहना भी हुई, मगर उन्हें भुगतना भी पड़ा। उनकी प्रतिभा और क्षमता के विकास के मार्ग में मानव कृत अवरोध ला खड़े कर दिए गये।

उनका त्यागपत्र स्वीकार होने का एक तीसरा कारण भी था। मिर्जापुर में बिड़ला की अल्यूमिनियम फैक्ट्री के लिए लागत से बहुत कम मूल्य पर राज्य सरकार ने बिजली देने का निश्चय किया था। चौधरी साहब ने उसका कड़ा विरोध किया था। उनका विरोध सर्वथा उचित था। रिहांड योजना से उपलब्ध कुल बिजली का आधा भाग बिड़ला की फैक्ट्री को देने का प्रस्ताव था। इससे किसानों को कृषि के लिए पर्याप्त बिजली मिल नहीं पाती। बिजली की लागत की यूनिट 33.16 रुपये थी, जबकि बिड़ला को दो रुपये पर पच्चीस साल के लिए वह दी गयी। 1963-64 की आडिट रिपोर्ट के अनुसार इससे राज्य को प्रतिवर्ष 50-55 लाख रुपये का नुकसान हुआ। डॉक्टर सम्पूर्णा-

नन्द जैसे समाजवादी मनीषी ने ऐसा क्यों किया, यह समझ में आने वाली बात नहीं है। शायद 13 मार्च 1950 के अपने प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू को सम्बोधित पत्र (परिशिष्ट-ब) में चौधरी चरण सिंह द्वारा प्रकट मत कि डॉक्टर साहब सिद्धांतों की परिकल्पना में बौद्धिक रूप से अत्यधिक व्यस्त होने के कारण दृश्य यथार्थ को जान ही नहीं पाते थे, सच हो। जो हो, चौधरी साहब के त्यागपत्र से सारा प्रदेश चिन्तित हुआ। सुप्रसिद्ध दैनिक नेशनल हेराल्ड ने उस पर निम्न टिप्पणी प्रकाशित की,—"चौधरी चरण सिंह का त्यागपत्र व्यक्तिगत तथा संस्था (पार्टी) दोनों के लिए दुःखान्त घटना है। उनका मन्त्रिमण्डल से निकल जाना उत्तर प्रदेश शासन के लिए बड़ी हानि की बात है। श्री सम्पूर्णानन्द ने ऐसा साथी खोया है, जो योग्य, गम्भीर, परिश्रमी और सत्यनिष्ठा के लिए ख्यात है।"

दिसम्बर 1960 में सम्पूर्णानन्द जी की जगह श्री चन्द्रभानु गुप्त के मुख्य मन्त्री बनने पर चौधरी साहब मन्त्रिमण्डल में वापिस लौटे। उन्हें इस बार गृह और कृषि मन्त्री बनाया गया। गृह विभाग का मुख्य काम शान्ति-सुव्यवस्था को स्थापित करना और जनमानस को कानून का प्रेमी बनाना है। कृषि का काम इसके विपरीत उपज को बढ़ाकर गांवों तथा देश का सर्वांगीण विकास करना है। एक का आधार दण्ड और दूसरे का सघन प्रसार है। दोनों परस्पर विरोधी कार्य-पद्धति के विभाग थे। चौधरी साहब की, लेकिन जैसी कृषि की उन्नति में उल्लेखनीय भूमिका रही, उससे बढ़-चढ़ कर अद्भुत क्षमता का आदर्श उन्होंने गृह विभाग में उपस्थित किया। पुलिस की परिपाटियां अभी दासता-काल की थीं। जनता को भय और आतंक से दबा कर रखना ही उन्हें सिखाया गया था। स्वतंत्र देशों में पुलिस अपराधों के अनुसंधान के साथ-साथ जनसेवा की सशक्त माध्यम है। यहां की पुलिस को उस रास्ते पर चलाया ही नहीं गया था, उल्टे राजनेताओं के चन्दा बटोरने की तरह उनमें घोर भ्रष्टाचार और अक्षमता व्याप्त थी। चौधरी चरण सिंह ने पूरे विभाग को कठोर अनुशासन में बांधकर उसे जनोपयोगी बनाने की सफल कोशिश की। सच तो यह है कि जैसे भूमि-सुधारों और जमींदारी उन्मूलन में उन्होंने क्रान्तिकारी काम किया, वैसे ही गृह विभाग को उन्होंने लोक-कल्याणकारी रास्ते पर तेजी से निदेशित किया। पुलिस की मानसिकता को लोकोपयोगी बनाने के साथ-साथ उन्होंने उनकी कठिनाइयों को भी अच्छी तरह समझा-बूझा। उन दिनों मध्य प्रदेश के भिण्ड जिले से मिले क्षेत्र आगरा, मैनपुरी और इटावा के यमुना के खादर में दस्यु सरदारों का भारी आतंक व्याप्त था। एक प्रकार से उस इलाके में उनका समानान्तर शासन चल रहा था। चौधरी साहब ने गृह विभाग का कार्य संभालते ही उस बीहड़ इलाके का दौरा कर वहां की परिस्थितियों और इलाके की विकटता का अध्ययन किया। पुलिस दल की छाती ऐसा निडर और दक्ष तथा संवेदनशील मन्त्री पाकर फूल कर दुगुनी हो आयी। उन्होंने सर-

गर्मी से काम किया। उक्त इलाके में डकैती अगर मिटी नहीं, तो एकदम रुक गयी। सन् 1962 में जब गृहमन्त्री का काम उनसे हटा लिया गया, तब डाकुओं ने राहत की सांस ली और अपनी अराजकता फिर शुरू की। इससे राज्य ही नहीं, देश भर में उनकी प्रशासनिक क्षमता की सराहना हुई। उनकी बढ़ती ख्याति को उनके सहयोगी सह नहीं सके। दस महीने से अधिक वे गृह मन्त्री नहीं रह सके। गृह विभाग के कर्मचारियों और सर्वसाधारण में सरदार पटेल, भारत के पहले गृह मन्त्री, की प्रतिभा आ झलकी। श्री चन्द्र भानु गुप्त ने उनसे गृह विभाग हटा लिया। सन् 1963 में उन्हें फिर त्यागपत्र देना पड़ा। श्रीमती कृपलानी के मुख्य मन्त्रित्व काल में वे फिर कृषि, पशुपालन और वन मन्त्री बनाये गये। सन् 1966 में उन्हें स्वायत्त शासन मन्त्री का चार्ज दिया गया।

सन् 1967 तक के मंत्री काल में दो तथ्य एकदम साफ प्रकट होते हैं। पहला तो यह कि उनके विभाग जल्दी-जल्दी बदले गये। इसका कारण उनकी उच्च प्रशासनिक क्षमता और निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं आंका जा सकता। दूसरा कारण उनकी उच्चकोटि की सत्यनिष्ठा और उनकी भ्रष्टाचार मिटाने की गहरी ललक हो सकती है। सार्वजनिक जीवन चरित्र और नैतिकता के लिए आग की तेज धारा है। विरले ऊंचाई के लोग ही उसे बेदाग पार कर पाते हैं। साधारण पदाधिकारी, मंत्रीगण भी, प्रभुता के मद और सत्ता की शक्ति से स्वार्थी बन जाते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य में क्या शायद सारे देश में चौधरी चरण सिंह की अकाट्य सत्यनिष्ठा के करीब पहुंचने वाले राजनेता उंगलियों पर गिने जाने वाले भी बहुत मुश्किल से ढूंढ़े जा सकते हैं। महत्त्वाकांक्षी या दुराकांक्षी सहयोगियों में ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध ईर्ष्या होनी स्वाभाविक है। जो अस्वाभाविक है—वह सहयोगियों द्वारा चौधरी साहब के खिलाफ अनर्गल प्रचार है, जिसका कहीं सिर-पैर नहीं। इस निष्ठा का व्यक्ति किसी राज्य या देश की अनमोल उपलब्धि माना जाता, किन्तु यहां के पतनोन्मुख राजनीतिज्ञों की उसे उखाड़ने की ही अनवरत चेष्टा रही।

दूसरा तथ्य यह प्रकट होता है कि उपरोक्त प्रक्रिया में चौधरी साहब को सन् 1967 तक शिक्षा, सहकारिता, उद्योग तथा सार्वजनिक निर्माण को छोड़ कर राज्य के दूसरे सभी विभागों के कार्य-कलाप का घनिष्ट अनुभव प्राप्त हो गया। यह भी आश्चर्य की बात है कि उन्हें कभी उद्योग विभाग नहीं मिला। इसका कारण उनका श्रमपूरक घरेलू और ग्रामीण उद्योगों पर गांधीवादी चिन्तन ही हो सकता है जो नेहरू के रूस से उधार ली हुई भारी उद्योगों की नीति के खिलाफ था। देश गांधी जी को कब का भूल चुका था। जो हो, इतने विभागों का अनुभव भी भावी की झांकी थी। वह यथास्थान··· ।

राज्य में चौधरी चरण सिंह ने जिस विभाग को छुआ, उसी में सेवा की नयी

स्फूर्ति भर गयी। प्रशासनिक दक्षता, मौलिकता, दूरदर्शिता तथा अनसुलझी समस्याओं को आसानी से हल करने की इनकी सहज प्रतिभा के साथ-साथ उनकी ग्राम-परक अर्थनीति से सारा प्रदेश उनके प्रति विश्वास और अगाध श्रद्धा से भर आया।

जमींदारी उन्मूलन की तरह भूमि सुधारों का उनका काम भी कई माने में ऐतिहासिक माना जायेगा। उन्होंने कृषि की उपज को बढ़ाने के लिए भूमि की उर्वरा शक्ति को सक्रिय दशा में सुरक्षित रखने के लिए सन् 1954 में उत्तर प्रदेश का भूमि संरक्षण कानून स्वयं तैयार कर पारित कराया। कानपुर कृषि महाविद्यालय के बी० एस-सी० परीक्षा में दो वर्ष का इसका पाठ्यक्रम भी रखा गया। सन् 1961 में उक्त कानून का विस्तार कर उसे संशोधित रूप में भूमि और जल संरक्षण कानून बनाया गया। चौधरी चरण सिंह का भूमि संरक्षण का कानून भी हिन्दुस्तान में पहला था। यही नहीं मिट्टी के वैज्ञानिक परीक्षण के लिए जिला और विकास खण्डों में केन्द्र स्थापित कर उसकी योजना चलायी गयी। निजी कृषि कालेजों और संस्थाओं में भी इसकी व्यवस्था करायी गयी। मिट्टी परीक्षण से ही खेतों में विभिन्न खादों का अनुपात से प्रयोग किया जा सकता है जिससे कि उपज बढ़े।

सन् 1963 तक बीज, उर्वरक, कृषि यंत्रों आदि की सुविधा सहकारी समितियों को ही मिलती थी। तब तक लगभग चालीस प्रतिशत किसान ही इन समितियों के सदस्य बने थे। शेष साठ प्रतिशत किसानों को उक्त सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए चौधरी साहब ने कृषि आपूर्ति संस्थान की योजना चलायी। इसके माध्यम से सहकारी समितियों के सदस्यों की तरह शेष किसानों को भी सब सुविधाएं मिलने लगीं। ये संस्थान बहुत उपयोगी साबित हुए और अब तक चल रहे हैं। उत्तम और सघन खेती के तरीकों से किसानों को परिचित कराने के लिए उन्होंने कृषकों के प्रशिक्षण की योजना भी चलायी। कालक्रम से इस योजना को सारे देश ने अपनाया।

देखने में छोटी और साधारण, लेकिन उपज बढ़ाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों को एक किसान का बेटा ही—जिसका लोहा मान कर सोना उगलती है जमीन—चरितार्थ कर सकता था। विदेशी ज्ञान और शहरी चमक-दमक में पले शासन के कर्णधारों तथा खेती की क्रिया-प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ उच्चाधिकारियों को इन वास्तविकताओं का अनुभव किताबों को पढ़ कर कैसे होता?

सन् 1964 में चौधरी चरण सिंह ने कृषक समाज को स्थापित किया। यह निर्दलीय संस्था थी। इसका उद्देश्य विज्ञान और खेती के आधुनिक तरीकों और उपलब्धियों को आम किसानों तक पहुंचाना था। जिलों के कृषि अधिकारी इस संस्था के सदस्य बनाये गये। वास्तव में कागज पर संस्था की कल्पना पहले से मौजूद थी। चौधरी चरण सिंह ने केवल उसे जीवित कर दिया। ईर्ष्यालु सहयोगियों ने यह सोच कर कि इससे चौधरी साहब की साख गांव-गांव में जम जायेगी, साल भर बाद ही

जिला कृषि अधिकारियों के उक्त संस्था का सदस्य होने पर मुख्य मंत्री श्रीमती कृपलानी से रोक लगवा दी। बाद में, चौधरी साहब के कांग्रेस से अलग होने पर इस संस्था का दाह-संस्कार कर दिया गया।

पशु विभाग के मंत्री के रूप में भी चौधरी चरण सिंह ने उल्लेखनीय काम किया। खेती के बाद किसानों का सबसे महत्त्वपूर्ण धन पशु है। सन् 1953-54 में चौधरी साहब ने पशु-बाजारों के समुचित संचालन और नियंत्रण के लिए एक विधेयक तैयार किया। देश भर में इस विषय पर यह पहला विधेयक था। मुख्य मंत्री पंत जी ने उसे जरूरी भी माना। दिसम्बर 1954 में वे केन्द्र सरकार के गृहमंत्री बन कर चले गये। उसके बाद लाख कोशिश पर भी विधेयक कानून नहीं बना, प्रत्युत यह विभाग ही चौधरी चरण सिंह से हटा लिया गया। अपनी प्रेरणा से सन् 1955 में चौधरी साहब ने गोहत्या निरोध कानून जरूर बनवाया। सन् 1964 में उन्होंने गोहत्या की रोकथाम के लिए एक पशु संरक्षण विधेयक भी तैयार किया था। उसमें बछड़ों के निर्यात पर प्रतिबन्ध प्रस्तावित था। विभाग बदल जाने के कारण वह कानून नहीं बन सका। चौधरी चरण सिंह ने एक बार मंत्री पद से हटने के बाद अपनी दूधारू गाय पंडित बलभद्र प्रसाद मिश्र, 'भारत' के भूतपूर्व सम्पादक और तत्कालीन सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश को दे दी थी। श्री मिश्र जी गो-सेवक थे। मिश्र जी से उन्होंने कहा था—"मिश्र जी, मैंने मंत्रि-पद से त्याग पत्र दे दिया है। बंगला गया, नौकर-चाकर गये, मेरी गाय की देखभाल कौन करेगा ? हमारे यहां गाय बेची नहीं जाती। इसलिए आप यह गाय ले जाइये। आप सुपात्र हैं।" ईमानदारी की हद देखिये। लम्बे काल तक मंत्री रह कर भी, वह अपने को एक गाय रखने में अममर्थ पा रहे थे। दूसरों से अपने लिए लेना इनकी प्रकृति में ही नहीं।

चार महीने के लिए वे सिंचाई और बिजली मंत्री भी रहे। बिजली विभाग भ्रष्टाचार के लिए उतना ही कुख्यात था, जितना पुलिस विभाग। चौधरी चरण सिंह के नाम से ही उच्चाधिकारियों के कान खड़े हो गये। उन्होंने लखनऊ की दुकानों से लिए ब्रिजली के उपकरणों का तत्काल ही मूल्य चुका कर भरपायी ली। जो उपकरण उपहार में मिले थे, उसकी भी रसीद ले ली गयी। चौधरी चरण सिंह ने तत्कालीन मुख्य अभियंता को जिनकी सत्यनिष्ठा की शोहरत नहीं थी, अवकाश प्राप्त करने के पूर्व छुट्टी पर भेज दिया। डॉक्टर सम्पूर्णानन्द को यह अच्छा नहीं लगा। बिड़ला की अल्यूमिनियम फैक्ट्री को बिजली सस्ते दर पर देने से प्रबल मतभेद हो ही चुका था। अप्रैल 1959 में चौधरी चरण सिंह ने त्यागपत्र दे दिया। सिंचाई विभाग, बाद में भी जब वे दिसम्बर 1960 में मंत्रिमंडल में लौट कर आये, उनके नाम से थरथराता रहा।

अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ महीनों के परिवहन विभाग के मंत्रित्व काल में उन्होंने बेनामी चलने वाली बसों-ट्रकों को मालिकाना अधिकार दिलाया और एक व्यक्ति

को एक से अधिक "परमिट" न देने की परम्परा चलायी। इससे परिवहन विभाग में बिचौलियों का भ्रष्टाचार एक हद तक समाप्त हो गया। एक से अधिक रोजगार नागरिकों को न देने की नीति पर अगर भारत सरकार चली होती या अब भी चलती तो बड़ी हद तक बेरोजगारी ही नहीं मिटती, आर्थिक असमानता भी घटती। इसी तरह सात महीने के अपने वित्त मंत्रित्व काल में उन्होंने फिजूलखर्ची पर कड़ी रोक लगायी और सभी विभागों को मितव्ययितता का कड़ाई से पालन करने पर विवश किया। वित्त विभाग में बिक्री कर सम्भाग भी था। उसकी दशा दयनीय थी। इतने कम समय में वे बिक्री विभाग को संतुलित रूप नहीं दे सकते थे। उन्होंने उसे सक्रिय जरूर बनाया। गल्ला विक्रेताओं और शासन के बीच खाद्यान्न पर सेल्स टैक्स का विवाद वर्षों से अनिर्णीत पड़ा था। उन्होंने विवाद के हर पहलू को जांच कर उसका तत्काल निर्णय कराया और उस निर्णय को कड़ाई से लागू किया।

स्वायत्त शासन विभाग के मंत्री के रूप में भी उन्होंने दूरगामी प्रभाव के आमूल परिवर्तन किये। नगरपालिकाओं के कार्यकारी अधिकारियों का स्थानान्तरण नहीं होता था। इससे उनमें स्थानीय विषयों के पक्ष-विपक्ष में दलगत सहानुभूति स्वाभाविक हो उभर आती थी और वे निष्पक्ष नहीं रह पाते थे। चौधरी साहब ने इन अधिकारियों की सेवाओं का विकेन्द्रीकरण किया। इससे अधिकारियों में अभिनव प्रेरणा और स्फूर्ति की जागृति स्वाभाविक थी। कर्मचारियों के वेतनमान पर भी उन्होंने कार्य भार संभालते ही ध्यान दिया। एक ही स्तर के काम के लिए विभिन्न वेतनमान अंग्रेजों की देन है। इससे भ्रष्टाचार न पनपता तो क्या होता? चौधरी साहब ने कोई वेतन आयोग बिठा कर देरी किए बिना उनका वेतनमान सरकारी कर्मचारियों के बराबर कर दिया। स्वायत्त संस्थाओं के कर्मचारी उसके लिए चौधरी चरण सिंह के आज भी ऋणी हैं। एक वेतनमान की सारे देश की सुव्यवस्था की मांग है। सही बात भी वही है—विशेष कर "कन्ट्रोल" के इस विश्रृंखल युग में। वह अभी तक कहां हो पाया है? आज भी सरकारी तंत्र में जाने कितने वेतनमान हैं, कितनी विषमतायें हैं, कितना असंतोष है? लेकिन कौन देखे, कौन सुने?

प्रायः तीन साल वे वन विभाग के मंत्री रहे। वहां भी दशकों पुरानी समस्याएं थी। कार्य भार संभालते ही कुमायूं क्षेत्र की 15 साल से जटिल समस्याओं का उन्होंने दृढ़ता से निस्तारण किया। कुमायूं में लगभग सोलह सौ एकड़ जंगलात के पेड़ों को अवैध तरीके से काट कर ठेकेदार उसे तेजी से बंजर बना रहे थे। राजनैतिक कारणों से कानून होते हुए भी उक्त जंगलात का अधिग्रहण नहीं हो पा रहा था। चौधरी चरण सिंह ने उनकी अनसुलझी समस्या को एक आदेश द्वारा समाप्त कर दिया। जंगलात का अधिग्रहण कर उनका प्रबंध जिलाधिकारियों को सौंप दिया। एक भी राजनैतिक सामन्त या उनसे मिले ठेकेदार ने चूं तक नहीं किया। कुमायूं क्षेत्र में

सर्वत्र इसकी बड़ी सराहना हुई। उसी तरह यमुना और चम्बल क्षेत्र का एक सवाल वर्षों से अनिर्णीत चला आ रहा था। चौधरी साहब ने वहां वन संरक्षण की योजना सक्रियता से चलाकर वहां की हजारों एकड़ जमीन को परती होने से बचा लिया। पक्की सड़कों के दोनों ओर पेड़ों का बाग लगाने की योजना को उन्होंने ही प्रारम्भ किया। बहुत से भूतपूर्व जमींदारों ने वन क्षेत्र में जमींदारी उन्मूलन के बाद भी जमींदारियां हड़प रखी थीं। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था। सालों से यह स्थिति चली आ रही थी। चौधरी चरण सिंह ने एक सीधा सादा कानून बनाकर ऐसी जमींदारियों को सरकार के कब्जे में ले लिया। कभी हल न होने वाली समस्या सही विवेक और दृढ़ता से बिना मीनमेष के हल हो गयी। जंगलात की जमीनों पर नया अतिक्रमण भी रुक गया। जंगली पशुओं की सुरक्षा हेतु भी वे कानून बनाना चाहते थे, जो विभाग बदल जाने से नहीं बन पाया।

जहां इरादा पक्का हो और काम करने की लगन हो, वहां क्या नहीं किया जा सकता है? चौधरी चरण सिंह ने इसे अपने हर कार्य क्षेत्र में साबित कर दिखाया। लेकिन भूमि सुधारों के बाद उनकी चमत्कारी विशिष्टता गृह मंत्री के रूप में ही प्रकट हुई। वे 15 महीने ही गृह मंत्री रह पाये। इसी अवधि में विभाग में ही नहीं, सारे प्रदेश में एक नयी बिजली कौंध गयी। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, उन्होंने पुलिस की दासताकालीन कार्य प्रणाली और उससे उत्पन्न आतंक को मिटाने या कम करने की सफल कोशिश की। उनके नाम का जादू सिंचाई विभाग की तरह यहां भी रंग लाया। उनके गृह विभाग की बागडोर संभालते ही लखनऊ स्थित पुलिस अधिकारियों ने बाजार से खरीदी या उपहार स्वरूप ली गयी वस्तुओं की कीमत का रातोंरात भुगतान किया या भरपाई ली। चौधरी चरण सिंह पुलिस में व्याप्त भयंकर भ्रष्टाचार से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने पुलिस के इंसपेक्टर जनरल को, जिनका कार्यकाल अनियमित रूप से बढ़ाया गया था, सेवानिवृत्त होने की आज्ञा दी। आई० जी० महोदय को जाना पड़ा। उनके इस तरह अचानक जाने से ही विभाग में खलबली मच गयी। चौधरी साहब ने विभाग को आश्वासन दिया कि वे उनके कर्त्तव्य-पालन में किसी प्रकार सरकारी या राजनैतिक हस्तक्षेप नहीं होने देंगे। इससे पुलिस का मनोबल जरूर बढ़ा। उन्होंने पुलिस दल के हर सदस्य से यह आग्रह भी किया कि वे सम्पूर्ण ईमानदारी से नियमानुसार अपना कर्त्तव्य पालन करें और ऊंच-नीच सबको कानून की नजर में बराबर रखें।

पुलिस को नयी कार्य प्रणाली का उदाहरण भी जल्दी ही मिला। चौधरी साहब ने उच्च स्तरीय दबाव को न मान कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के विरुद्ध दंगा-फंसाद और मानसरोवर सिनेमा हाल में आग लगाने के मुकदमे को अदालत से वापस लेने से इन्कार कर दिया। यह फसाद डा० सम्पूर्णानन्द के मुख्य-

मन्त्रित्व काल में हुआ था। ऐसा ही कड़ा रुख उन्होंने बलरामपुर इन्टर कालेज के छात्रों पर चल रहे मुकदमें में लिया। हमीरपुर के एक विधायक डकैती में फंसे थे। उन्होंने भी मुकदमा उठा लेने के लिए बहुत दबाव डाला। चौधरी साहब ने किसी की नहीं सुनी। इसी तरह प्रतापगढ़ के एक कांग्रेसी विधायक, जिन्हें बाद में कत्ल के आरोप में सजा मिली, तथा झांसी के एक विधायक के खिलाफ जिन्होंने कुंआ खुदवाने के बहाने सरकारी रुपया हड़प लिया था, कानूनी कार्यवाही करने पर जोर दिया।

एक दूसरा उदाहरण भी उल्लेखनीय है। लखनऊ में हजरतगंज के चौराहे पर तैनात ट्रैफिक के एक सिपाही ने नियम विरुद्ध साईकिल पर सवार तीन-चार छात्रों का चालान कर दिया था। छात्रों ने एक दूसरे सिपाही के साथ मारपीट भी की थी। उनमें से एक छात्र किसी राजपत्रित पद के लिए चुन लिया गया था। नियुक्ति के पहले उसके चरित्र आदि पूर्व इतिहास की जांच-पड़ताल हो रही थी। चौधरी साहब के एक सहयोगी ने उक्त छात्र को माफ कर देने की सिफारिश की। छात्र की विधवा मां और मां के पिता भी बिलखते हुए उनके पास माफी के लिए विनती करने पहुंचे। चौधरी साहब माफ करना चाहते नहीं थे। छात्र के भविष्य को ध्यान में रख कर उन्होंने विधवा मां और मां के बूढ़े पिता से कहा कि अगर छात्र पुलिस लाइन के सारे सिपाहियों के सामने सम्बन्धित सिपाही से माफी मांगे और वह माफ कर दे, तब वे उन्हें क्षमा कर सकेंगे। इस घटना से पुलिस का चौधरी साहब के प्रति स्नेह और आदर का भाव बहुत बढ़ गया।

चौधरी चरण सिंह ने सन् 1962 में इस बात पर इस्तीफा दे दिया कि मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त ने मेरठ के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को इसलिए बिना उनकी सहमति के बदल दिया कि उसने निष्पक्ष जांच कर एक अपराधी कांग्रेसी पर मुकदमा चलाया। उनका विचार था कि वे अगर नियमों के अनुकूल अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले पुलिस अधिकारी को संरक्षण नहीं दे सकते, तो उन्हें गृहमंत्री बने रहने का कोई अधिकार नहीं।

चौधरी साहब बेईमान पुलिस अधिकारियों या पुलिस जनों के तबादले और प्रोन्नति के मामले में सिफारिशों को सुनते ही नहीं थे। ऐसा करने या कराने वाले के विरुद्ध समुचित अनुशासनिक कार्यवाही भी करते थे। इससे पुलिस दल में, राज्य में आजादी के बाद पहली बार यह वातावरण बना कि गलती क्षमा नहीं होगी और अच्छे काम की पूरी सराहना होगी। इससे पुलिस दल का मनोबल और ऊंचा उठा। उनकी सतर्क देखरेख में ऊंचा से ऊंचा अधिकारी तरक्की आदि के मामले में योग्यता तथा वरीयता आदि नियमों का निष्पक्ष पालन करने लगा। इससे सब-इंसपेक्टरों के चुनाव में उन दिनों सिफारिशें बिल्कुल बन्द हो गयीं।

चौधरी चरण सिंह एक ही गलती पर बड़े और छोटे अधिकारी को भिन्न-

भिन्न सजा देने के पक्ष में थे । ऊंचे और अनुभवी अधिकारियों से उन्हें हमेशा आदर्शोन्मुख रहने की अपेक्षा थी । उन्होंने अपराध स्थिति को जानने के लिए रिपोर्ट को सही-सही दर्ज करने तथा उन्हें न छिपाने का कड़ा आदेश दिया । पुलिस द्वारा झूठी गवाहियों के खिलाफ भी उन्होंने कदम उठाया । सब-इंसपेक्टरों के चुनाव में भी उन्होंने शारीरिक क्षमता में प्राप्त अंकों को लिखित परीक्षा के अंकों में जोड़ने का आदेश दिया । इससे चुनाव में बड़े हद तक मनमानी घट गयी और अच्छे अभ्यर्थी सफल होने लगे । उन्होंने मुरादाबाद पुलिस ट्रेनिंग कालेज में प्रशिक्षण के दौरान 1,000/- रु० अग्रिम जमानत राशि जमा करने के नियम को भी समाप्त कर 80/- रु० प्रति महीना अनुदान देने का आदेश दिया । इससे हरिजन और गरीब अभ्यर्थियों को बहुत लाभ पहुंचा ।

गृह विभाग के मंत्री होते ही चौधरी चरण सिंह ने 1961 के पुलिस बजट में यह घोषणा की कि अराजपत्रित पुलिस वालों के उत्तरजीवियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मुठभेड़ में मारे जाने पर उनका पूरा आर्थिक वृद्धि समेत वेतन जीवन भर मिले और बाद में उत्तरजीवी को पेंशन मिले ।

चौधरी साहब ने पहले पहल लखनऊ और कानपुर नगरों में रेडियो यंत्र युक्त पुलिस के चलते-फिरते दस्तों को कायम किया । दूसरे प्रमुख शहरों में भी ऐसे दस्ते मोटरगाड़ी में लैस कायम किए गये, जिससे उनकी सेवाएं चौबीसों घंटे उपलब्ध रहे और सूचना मिलते ही जो बिना कोई देरी किए घटना स्थल पर पहुंच जांए । इससे जन साधारण को अपनी सुरक्षा के संग-संग पुलिस की कार्य प्रणाली पर विश्वास जगा ।

चौधरी चरण सिंह की कठिनाई यह थी कि अंग्रेजी शासन काल की परम्परा को राज्य में उनके पहले तोड़ने की कोशिश ही नहीं की गई थी । अंग्रेजी शासन विदेशी होने के कारण अपना वेतन भत्ता आदि बहुत ऊंचा बनाये रखते थे । वे कहा करते थे कि उनका जीवन स्तर ऊंचा है । नीचे के स्तर के पुलिस अधिकारियों का मान देय बहुत कम था और दरोगा-सिपाहियों का तो इतना कम था कि बिना घूस या भ्रष्टाचार के वे जीवनयापन कर ही नहीं सकते थे । इंग्लैण्ड में स्थिति ठीक इसके विपरीत थी । वहां अदना सिपाही (कान्सिटेबल) का भी अच्छी तरह जीवनयापन के लिए न्यूनतम जरूरी वेतनमान है । उच्चतम वेतन से उनका अन्तर भी कम है । इसलिए उनमें बड़े और छोटे का आपसी मतभेद बहुत ही कम है और वहां असंतोष नहीं पनपता । यहां वेतनमान के अलावा रहने आदि की स्थितियों तथा स्तर में भी जमीन-आसमान का अन्तर है । चौधरी चरण सिंह का इधर भी ध्यान गया । पुलिस या किसी विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए इसी मूल कारण का उच्छेदन करना था । किन्तु इतनी अल्प अवधि में वे पुलिस जनों में व्याप्त विषमता को मिटाने पर

अधिक काम नहीं कर सके। हां, नियमानुकूल जो सिपाहियों को मिलना चाहिए था, उसे उन्होंने कड़ाई से दिलाया। वे मुरादाबाद के निरीक्षण भवन में ठहरे थे। वहां से कहीं जाने के लिए बाहर निकले थे कि एक सिपाही ने उन्हें विदाई का सलाम किया। उसकी जर्सी पर उनकी नजर पड़ी। वह फटी-पुरानी थी। नियमानुसार हर तीन साल पर जर्सी बदलनी चाहिए थी। वह पांच साल से बदली नहीं गयी थी। उन्होंने निरीक्षण भवन में लौट कर लखनऊ में गृह सचिव को टेलीफोन से आदेश दिया कि दूसरे दिन तक सिपाहियों की जर्सी नियमानुकूल बदल जाय। ऐसा तत्काल किया गया। सिपाहियों से ऊंचे अधिकारियों द्वारा अपने निवास के बंगलों पर बेगार लेने की परिपाटी पर भी उन्होंने कड़ाई की। उनके समय में वह बन्द भी हो गई थी।

उन्होंने अनुभव किया और एक से अधिक बार सार्वजनिक रूप से कहा भी कि पुलिस जनों को स्वतंत्र देश में सेवा का माध्यम बनाने और कड़ाई से कर्त्तव्य पालन कराने में आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धि में कड़ी कठिनाइयां और बाधाएं हैं, जिनके अन्तर्गत उन्हें काम करना पड़ता है। परिवहन, टेलीफोन, तकनीकी प्रशिक्षण आदि की कमियों पर उन्होंने यथासम्भव ध्यान दिया। पुलिस कर्मचारियों को यह विश्वास होने लगा था कि चौधरी चरण सिंह उनकी शिकायतों और प्रतिबन्धों को दूर करके रहेंगे। उन्हें यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि पुलिस के एक आयोग के बहुत से सुझावों पर जैसे वेतन वृद्धि आदि को उन्होंने तत्काल कार्यान्वित कराया। उन्हें लगने लगा कि चौधरी चरण सिंह जहां कठोर अनुशासनप्रिय अधिकारी हैं, वहां वे साधारण से साधारण स्तर के कर्मचारियों के अधिकारों के उत्साही संरक्षक भी हैं। आज दशकों बाद यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि चौधरी चरण सिंह का राज्य के गृह मंत्री के रूप में काम और निर्देशन उतना ही चमत्कारी और प्रेरणादायक था, जितना उनका जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधारों का काम क्रान्तिकारी था। आज में कल की रूपरेखा छायी रहती है। बाद में, जनता सरकार में, वे भारत के गृह मंत्री बने। उस काम का, जो सरदार वल्लभ भाई पटेल के स्तर का प्रेरणादायी और दूरदर्शी था, विवेचन संबंधित प्रकरण में आगे किया जायेगा।

चौधरी चरण सिंह की हर काम के ब्योरे को पूरा-पूरा जान कर ही उस पर निर्णय लेने की आदत है। इसलिए कोई भी अधिकारी या सार्वजनिक पदाधिकारी उनको गुमराह नहीं कर सकता। ज्ञान शक्ति होता है। ज्ञान मार्ग योग में परम प्राप्ति का प्रमुख साधन है।

सन् 1966 तक चौधरी चरण सिंह ने प्रशासन में सुधार लाने तथा देश के दूरगामी हित के लिए पराधीनताकालीन परिपाटियों को बदलने के लिए निम्न प्रमुख योजनाएं प्रस्तुत की थीं। इन पर या तो विचार ही नहीं किया गया या जनहित की काफी क्षति होने पर विचार किया गया। इनमें से कुछ ये हैं :

1. 1950 के मध्य दशक में वे पूर्वी जिलों के लिए छोटी सिंचाई परियोजनाओं को प्रारम्भ करना चाहते थे । उसकी सुनवाई नहीं हुई । प्रत्युत उनके विरुद्ध यह प्रचार जारी हुआ कि वे सब धन पश्चिमी जिलों में ही लगाने के पक्ष में हैं । अन्तत: 1964 में पूर्वी जिलों के बारे में उनकी बात मानी गयी ।

2. जाति प्रथा को मिटाने का प्रयत्न वे 1939 से ही करते आ रहे थे । 1948 में उन्होंने शासन से भूमि अभिलेखों में काश्तकारों की जाति न लिखने का नियम बनाया । अनुसूचित जाति से पूछने का प्राविधान तब भी रखा गया । सन् 1954 में उन्होंने पंडित नेहरू को इस सिलसिले में विस्तृत पत्र लिखा, जिसका जिक्र पहले भी किया गया है । उस पर किंचित ध्यान नहीं दिया गया ।

3. 1952 से ही वे कहते आ रहे थे कि हाकिम परगनाओं को जिलों से हटा कर तहसीलों में स्थापित किया जाय, जिससे लोगों का मुख्यालय जाने में समय बर्बाद न हो और हाकिम परगनाओं को गांवों का सही ज्ञान बढ़े । सब सहमत हुए । उस पर अमल नहीं हुआ । अब तक पूरा-पूरा अमल कहां हो पाया है ।

4. चौधरी चरण सिंह शायद उत्तर प्रदेश के पहले राजनैतिक नेता थे, जिन्होंने 1956 में बस्ती जिले के कार्यकर्त्ताओं के सामने जनसंख्या वृद्धि को रोकने के उपायों के बारे में आवाज उठायी । राज्य सरकार ने 1964 में इसमें सक्रिय रुचि ली ।

5. जून 1966 में चौधरी चरण सिंह ने कालेधन के विमुद्रीकरण की योजना तैयार कर भारत सरकार के सामने प्रस्तुत की । उस पर कुछ नहीं हुआ । उल्टे काला-बाजारियों के प्रभाव से रुपये का अवमूल्यन कर दिया गया ।

6. उत्तर-पूर्व भारत की, जिसमें अरुणांचल, नागालैंड और मिजोरम आदि सरहदी प्रदेश हैं, निरन्तर बिगड़ती स्थिति पर 1955 में चौधरी चरण सिंह ने भारत सरकार को यह लिखा कि चीन से मिल कर ये लोग विद्रोह करेंगे । उन्होंने चीनी आक्रमण की भी चेतावनी दी । इस बारे में वे प्रधानमंत्री, गृह मंत्री आदि से मिले भी । उनके तर्कों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । नतीजा सामने आया ।

लखनऊ में उन्हीं दिनों बातचीत के प्रसंग में उन्होंने कहा था कि लाख चाह कर भी वे ऊंचे से ऊंचे नेताओं को निजी स्वार्थ से ऊपर उठ कर देश के दूरगामी भविष्य के लिए सचेत नहीं कर सके । कोई भी नहीं कर सकता था । करने वाला राष्ट्रपिता चला गया था । वह कुर्सी नहीं चाहता था—हिन्दुस्तान को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली बनाने का उसका सपना था । चौधरी चरण सिंह उसी पर अंगद कदमों से बढ़ रहे थे । कम से कम उनकी प्रतिभा, सत्यनिष्ठा, कार्यदक्षता और लगन से उत्तर प्रदेश का उन्हें कभी पेशवा हो जाना चाहिए था । वह पूंजीपतियों, सामन्तों ने होने नहीं दिया । पूंजीवादी अधिनायकों के कारण कांग्रेस का हर स्तर कुटिल राज-नीति का शिकार बन गया । महात्मा जी के सर्वोदय का—व्यक्ति और समूह का—

शुभ लक्ष्य कांग्रेस से ओझल हो गया। कांग्रेसी जनों का गाल बजाना और हर तरह से स्वार्थ साधन करना ही ध्येय बन गया। चौधरी चरण सिंह जैसे गांधीवादी चिन्तक इस काजल की कोठरी में कितने दिन रह पाते ? कांग्रेस जनों के पतनोन्मुख विभीषिका को रोकने में समर्थ न होने पर उन्होंने कांग्रेस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य से किसानों, मजदूरों, भूमिहीनों को शोषण और दैन्य से बचाने के लिए, हिन्दुस्तान से भूख, बीमारी और अंगूठे को मिटाने के लिए यह सम्बन्ध-विच्छेद जरूरी था। जिस वृक्ष की छाया में पल बढ़ कर वे बड़े हुए, उसको छोड़ना साधारण नहीं, दारुण रूप से दुखदायी था। वृक्ष के सपने सूख गये थे। बापू के सपनों को साकार करने के लिए नया वृक्षारोपण करना था। इस महत् प्रयत्न का अरुणोदय अमावस्या के घोर अंधेरे को चीर कर ही होता।

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री

(भारतीय क्रांति दल)

1967-1975

फरवरी 1967 के आम चुनावों के कुछ पहले चौधरी चरण सिंह ने एक प्रसंग में स्वीकार किया कि वे निम्न स्तर के सरकारी कर्मचारियों से भ्रष्टाचार न मिटा सके, न कम कर सके।

प्र० आपके बीस वर्ष के अथक प्रयत्न के बाद भी ऐसा क्यों ? किसी ने पूछा।

उ० "ऊंचे मन्त्रियों और अधिकारियों के कारण। उनके भ्रष्टाचार का रूप बदल गया, कहीं-कहीं कम भी हो गया, वह मिटा नहीं। घोड़ा सवार को पहचान कर उसके इशारे पर चलता है।"

प्र० मंत्री और मोटी तनख्वाह वाले अधिकारी क्यों भ्रष्टाचार करते हैं ?

उ० चांदी बटोरने की घुड़दौड़, सम्पत्ति बनाने की होड़। नैतिकता और भारतीयता इससे पिट गये। पश्चिम की चमक-दमक की चकाचौंध में हम अपने को खो बैठे हैं। जड़ से कट कर हम कैसे जीवित रह सकेंगे ?"

प्र० क्या पूंजीवादी परम्परा में भ्रष्टाचार मिट सकता है ?

उ० "पूंजीवादी जन-जन में असमानता और विषमता जरूर बढ़ाता है। लेकिन सभी उंगलियां बराबर कब होती हैं ?"

— "सब उंगलियां तो हों। साम्यवादी देशों में ऊंच-नीच का अन्तर बिलकुल कम इसलिए है कि उनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती। व्यक्तिगत सम्पत्ति ही सारे भ्रष्टाचार और कुरीतियों की जड़ हैं।"

— साम्यवादी पद्धति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं रहती है। उससे व्यक्ति का सम्यक् विकास कुंठित हो जाता है। महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप में व्यक्ति प्रयत्नों के लिए पूरा स्वतंत्र रहेगा और एक निर्धारित आय के ऊपर उसकी आमदनी समाज की धरोहर होगी। इस तरह व्यक्ति समूह के कल्याण को सोचने और करने पर मजबूर होगा। अब तो साम्यवादी देश भी व्यक्ति के निजी प्रयत्न और प्रेरणा को अंगीकार कर रहे हैं।"

प्र० आजादी के साढ़े तीन दशक के बाद भी अच्छे काम का प्रेरणास्रोत धन क्यों हैं, देशभक्ति क्यों नहीं ?

उ० आपका सवाल उत्तम है। गांधी जी और भारतीय संस्कृति का "आत्मवत् सर्व भूतेषु" का यही परिप्रेक्ष्य था। देश इसी भावना से समुन्नत होगा। हमारी नीतियां गलत रही हैं। वे श्रम पूरक आर्थिक विकास की नहीं हैं, उनमें व्यक्ति का महत्त्व कम हो गया है। कृषि उत्पादन का भी अपेक्षित विकास नहीं हुआ। इससे गरीबी ठीक उसी जगह रही, जहां वह आजादी के दिन थी। हम एक निम्न-तम वेतनमान या पारिश्रमिक भी निर्धारित नहीं कर सके। आर्थिक असमानता से देश में लूट-खसोट मच गयी है। उसके मूल का उच्छेदन करना पड़ेगा, जमींदारी उन्मूलन की तरह पूंजीवाद में भी अगर उच्च नेतागण निष्ठावान और सक्रिय रहें तो भ्रष्टाचार रुक जाएगा। और प्रत्येक राज्य कर्मचारी का तो यह धर्म है कि अपने सुख, आराम और प्राणों का बलिदान करके भी राज्य और देश की सेवा करे। उनके अयोग्य अथवा भ्रष्टाचारी होने पर प्रजा बहुत पीड़ित होती है। देश का भविष्य कर्मचारियों और राजनेताओं पर ही निर्भर है।"

एक दीर्घ निःश्वास लेकर कमरे की खिड़की से बाहर देखते हुए चौधरी साहब बोले—"आज नहीं तो कल के लिए हमें आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों को हिन्दुस्तान की प्रतिभा के अनुकूल मोड़ना ही पड़ेगा। पंडित जवाहर लाल नेहरू समाजवादी ढंग की चर्चा करते थे, वे गांव की मिट्टी में नहीं सने थे। पश्चिम और रूस के आधुनिकतम उद्योगों की चकाचौंध में पूंजीपतियों के चंगुल में वे भी फंसे। कृषि उत्पादन पर उन्होंने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया। आज की स्थिति की बात मत कीजिए। मुद्रास्फीति के अलावा हमारे यहां है ही क्या ? विकास आज शहरों की चमक-दमक और उसके अल्प-मत के लिए है। अस्सी प्रतिशत ग्रामवासियों के लिए गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का नाटक भर है। यह ठीक है कि पूंजीपतियों की मदद गांधी जी ने भी ली थी। तब पूंजी-पति कांग्रेस पर छाये नहीं थे। आज चुनाव में गद्दी को बनाये रखने के लिए पूंजी की गड्डी पर गड्डी पूंजीपति उड़ेलते हैं और सरकार को अपने प्रभाव से चलाते हैं। पूंजी-परक व्यवस्था और चुनाव की अमर्यादित परम्परा से ही देश में अराजकतत्त्व पनप आए हैं। चुनाव में सफलता के वे जरूरी अंग हैं। देश की शान्ति व्यवस्था क्रमशः शिथिलतर होती जा रही है। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के समय देश में जो एकता का स्वर फूटा, वह अब समाप्त प्रायः हो गया है। अब एक ही घुड़दौड़ है—कैसे कुर्सी सुरक्षित रहे। कुर्सी का लालच जीवन काल के लिए ही होता तो समझ में आने वाली बात थी। उसे चक्रवर्ती सम्राटों की तरह प्रजातंत्र के दायरे में ही वंशगत बनाने की चेष्टा है। एक नहीं तो दूसरा, हो वंश का ही। इन कारणों से आज की सत्ता की राज-नीति भ्रष्टाचार का पर्याय बन कर रह गयी है। आज पुरानी कांग्रेस कितने नामों में बंटी है। जनता जनार्दन के उत्थान में सम्पूर्ण समर्पित राष्ट्रपिता बापू वाली कांग्रेस रही कहां ? आज तो निष्ठावान और दूरदर्शी देशभक्ति भी प्रश्न चिन्ह बनती जा रही है।

गांधी जी ने कितना सच कहा था कि आजादी के बाद कांग्रेस को भंग कर उसे लोक सेवा की शक्तिशाली संस्था बनाया जाय। सत्ता के मोह ने गांधी जी के नाम पर वोट खरीदने के लिए, यह नहीं होने दिया। उल्टे सत्ता के मोह ने यह स्थिति ला दी कि धर्म, ईमान, सिद्धान्त, स्वदेश की सुरक्षा, मानवता—सब बिकने लगे हैं। पुराने नैतिक मूल्यों का सर्वथा लोप हो गया है। देश तेजी से रसातल की ओर सरकता जा रहा है।

चौधरी चरण सिंह इतने पर भी कांग्रेस से अलग नहीं होना चाहते थे। कांग्रेस को तेजी से सुधार कर उसे सेवा का सशक्त माध्यम बनाने को वे उत्कंठित थे। उन्होंने चुनावों में कांग्रेस की विजय के लिए समुचित निर्देश दिए। बीमार हो जाने के कारण अपने क्षेत्र का वे दौरा नहीं कर सके। उधर जैसी कि आशंका थी, कांग्रेस के कतिपय राज्यस्तर के कर्णधार उन्हें ही हराने की अन्दर-अन्दर कोशिश कर रहे थे। जो हो, चुनावों में पार्टी की वह धाक नहीं रही जो पहले थी। कांग्रेस पार्टी को उत्तर प्रदेश में कुल 198 सीटें मिली, जबकि विरोधी दलों ने 227 सीटें जीतीं। विरोधी दलों ने चौधरी साहब को उनकी प्रगतिशीलता और हिन्दुस्तान के भविष्य के प्रति आस्था की याद दिला कर उनसे अपना नेता बनने का आग्रह किया। विरोधी दल चौधरी चरण सिंह की गांधीवादी आस्था से परिचित थे। उनकी गांवों और कृषि उत्पादन के उत्थान की ललक को भी वे जानते थे। इस दिशा में उनके प्रगतिशील चिन्तन के भी वे प्रशंसक थे। विरोधी दल क्या कोई भी जानता था कि देश की बहुसंख्यक जनता को समृद्ध बना कर ही हिन्दुस्तान को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। उन्हें यह भी विश्वास था कि नेतृत्व संभाल कर चौधरी चरण सिंह अपने सिद्धान्तों पर अटल रहेंगे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध बहती हवा में चौधरी चरण सिंह को अपना नेता चुनना चाहा। चौधरी चरण सिंह के साथ उनके बहुत साथी विरोधी दल से आ मिलते और उनका प्रबल बहुमत हो जाता। लेकिन चौधरी चरण सिंह ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। उन्होंने विरोधी दल के आग्रह को दो टूक इन्कार कर दिया, कहा—"मैं कांग्रेस नहीं छोड़ना चाहता।"

अगर वे विरोधी दलों का आमंत्रण स्वीकार कर लेते तो कम से कम अपने पचास सहयोगियों के साथ विरोधी दलों से मिल कर वे सर्वथा निरापद सरकार बना लेते। किन्तु परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के विभिन्न दलों के भानुमती के पिटारे पर भी क्या भरोसा किया जा सकता था? जब नये कांग्रेस विधायक दल के नेता के चुनाव का सवाल आया, तब कांग्रेसी प्रशासन को सक्षम सेवा का शक्तिशाली माध्यम बनाने के लिए चौधरी चरण सिंह ने श्री चन्द्रभान गुप्त के विरुद्ध अपनी उम्मीदवारी की घोषणा की। वे वरिष्ठ मंत्री थे धनीधोरी विचारक थे, उनका विशिष्ट आर्थिक कार्यक्रम था और अति शोषित जनता जनार्दन के शीघ्र उत्थान के लिए वे पूर्णतया समर्पित थे।

उनकी उम्मीदवारी से उत्तर प्रदेश ही नहीं, दिल्ली दहल उठी। श्रीमती इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री थीं। उन्होंने अपने विश्वस्त श्री उमाशंकर दीक्षित और ठाकुर दिनेश सिंह को चौधरी चरण सिंह को समझा-बुझा कर बैठाने के लिए लखनऊ भेजा। चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस की एकता बनाये रखने के लिए इस शर्त पर नेता पद के चुनाव से अपना नाम वापस ले लिया कि नये मंत्रिमंडल में कम से कम दो व्यक्तियों को जिनके भ्रष्टाचारी होने की आम चर्चा थी, स्थान नहीं दिया जाएगा तथा ईमानदार और कार्य-कुशल विधायक ही मंत्री बनाये जाएंगे। उन्होंने नेता पद के लिए श्री चन्द्रभान गुप्त का नाम स्वयं प्रस्तावित किया। उधर केन्द्र में श्री गुप्त ने मोरार जी देसाई और श्रीमती गांधी के बीच केन्द्रीय मंत्रिमंडल के लिए समझौता कराया। उसी समझौते के फलस्वरूप 13 मार्च 1967 को श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रधान मन्त्री की शपथ ग्रहण कर केन्द्रीय मंत्रिमंडल बनाया। निर्विरोध नेता चुने जाने पर श्री गुप्त ने राज्य के मंत्रिमंडल में चौधरी चरण सिंह को तो मंत्री बनाया, लेकिन उन्होंने उन दो व्यक्तियों को भी मंत्री बनाया, जिनके मंत्री न बनाये जाने का सर्वश्री दीक्षित और दिनेश सिंह ने आश्वासन दिया था। मंत्रियों की सूची में उन विधायकों का भी नाम नहीं था जिनकी ईमानदारी और सेवा की चौधरी चरण सिंह ने संस्तुति की थी। श्री चन्द्रभान गुप्त ने यह तर्क किया कि जो भी आश्वासन दिए गये हों, उनमें वे भागीदार नहीं थे और उन्हें मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को चुनने का पूरा अधिकार था।

चौधरी चरण सिंह ने इसे विश्वासघात माना और इससे वे बहुत दुःखी हुए। श्री उमाशंकर दीक्षित 17 मार्च को दुबारा लखनऊ आये। उन्होंने श्री गुप्त से बात करके चौधरी चरण सिंह से फिर मिलने को कहा। वह चौधरी साहब से नहीं मिले। ठाकुर दिनेश सिंह ने भी 31 मार्च को लखनऊ आकर मसले की हल ढूंढ निकालने का वादा किया। श्री दीक्षित की तरह वे भी लखनऊ आये ही नहीं। उन्होंने टेलीफोन से यह सूचना दी कि दूसरी पार्टी यानी श्री गुप्त को उनका हस्तक्षेप पसन्द नहीं और अब वे कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं। कांग्रेस के उच्च प्रतिनिधियों के ऐसे निम्न स्तर के आचरण की चौधरी चरण सिंह ने अपेक्षा नहीं की थी। उनको दिली चोट पहुंची। उन्होंने बहुत सोचा-विचारा। कांग्रेस छोड़ने का निश्चय करना उनके लिए दुर्वह भावनात्मक दुःख का कारण था। कांग्रेस की छत्रछाया में ही वे पले-बढ़े थे। कांग्रेस को महात्मा गांधी ने सींचा था। इस विकट परिस्थिति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गायत्री देवी ने उनकी मदद की। वे घटनाक्रम और उसके मोड़ से परिचित थीं। उन्होंने कहा कि कांग्रेस जब गांधी जी को घोंट कर पी गयी और देश की बहुसंख्यक जनता के विरुद्ध है तब उसके द्वारा कोई प्रभावकारी सेवा कदापि सम्भव नहीं। उसका सुधार भी असम्भव है। इसलिए नया रास्ता बनाना ही समीचीन है। शायद एक नये नेतृत्त्व के प्रकाश में विभिन्न विरोधी दल समन्वित रूप से काम कर सकें। यह प्रदेश के लिए,

देश के लिए परम शुभ होगा। जनसंघ, घोर दक्षिणपंथी दल, ने नाना जी देशमुख के द्वारा चौधरी चरण सिंह के प्रगतिशील दृष्टिकोण का पूरा-पूरा समर्थन करने का विश्वास भी दिलाया। एक दूसरी बात भी हुई। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त ने एक बयान दे दिया कि "मैं जब तक कांग्रेस दल का नेता हूं, कोई भी अलग होने का साहस नहीं कर सकता, जो ऐसा करेगा मैं उसे भंगी बना दूंगा।" चौधरी चरण सिंह के कलेजे में यह बात खंजर की तरह चुभ गयी, उनका असमंजस मिट गया। दूसरे दिन, 1 अप्रैल 1967 को वे विधान सभा में अपने साथियों के संग विरोधी बेंचों पर जा बैठे। उसी दिन बजट का एक मुद्दा सदन में बहुमत से अस्वीकृत हो गया। श्री गुप्त की सरकार ने बहुमत खो कर अपना त्यागपत्र दे दिया। लखनऊ, दिल्ली क्या सारे देश के कांग्रेसी राज्यों में भगदड़ मच गयी। चारों ओर से चौधरी चरण सिंह को कांग्रेस विधायक दल का नेता और मुख्य मन्त्री बनाने के लिए घोड़े दौड़ने लगे। उनसे जोरदार आग्रह किया गया। चौधरी चरण सिंह ने बड़ी दृढ़ता से दो टूक कलेजा करके कांग्रेस छोड़ी थी। उन्होंने कांग्रेस के कर्णधारों की विवश उदारता को अस्वीकार कर दिया —'तिरिया तेल — चढ़ै न दूजी बार।'

चौधरी चरण सिंह कांग्रेस की स्वार्थपरता, सिद्धान्तहीनता, उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार, कुर्सी सुरक्षित रखने के लिए देश विरोधी नीतियों की प्रवृत्ति से बेतरह क्षुब्ध थे। सत्ता कांग्रेस के त्याग और बलिदान को ही नहीं दूरदर्शी देशभक्ति की भावनाओं को काट कर खा गयी। ऐसे अनैतिक वातावरण में चौधरी चरण सिंह का सांस लेना मुश्किल हो रहा था। भयंकर मानसिक संघर्ष और ऊहापोह के बाद दृढ़ संकल्प से उन्होंने कांग्रेस छोड़ी थी। उन्हें गांधी जी के सपनों को चरितार्थ करना था, अस्सी प्रतिशत उत्पीड़ित ग्रामवासियों की गरीबी मिटा कर देश को सशक्त बनाना था। उनका रास्ता साफ था। वे उस लक्ष्य की ओर निष्ठापूर्वक बढ़ निकले।

उत्तर प्रदेश के विरोधी दल चौधरी साहब को अपना नेता बनाने के लिए उछल कर उनके पास दौड़े। भानमती के पिटारे में क्या निकले, उसकी क्या सम्भावनाएं हों, यह ठीक-ठीक जानना कठिन था। उनकी मांग को स्वीकार करना उससे भी अधिक कठिन था। चौधरी चरण सिंह को बहुत सोचना-समझना पड़ा। कांग्रेस एक लम्बी अवधि से चली आ रही ऐतिहासिक संस्था थी। उसमें चौधरी चरण सिंह को जब इतना संघर्ष झेलना पड़ा, तब विभिन्न दलों के सम्मिश्रण में जाने उन्हें क्या भुगतना पड़े। लेकिन मूल सवाल कांग्रेस के कुशासन का विकल्प प्रस्तुत करना था। कांग्रेस साढ़े तीन दशक की लम्बी अवधि में गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, अंधविश्वास मिटा सकने में असमर्थ रही। कांग्रेस के कर्णधार अब ऐसे थे जो उसके मूल उद्देश्य— सेवा को भूल चुके थे। वे अहर्निश चुनाव के दंगल की तैयारी में जुटे रहते थे। उनकी राजनीति यह बनी कि धोखा-धड़ी, छल-कपट, घूस-पक्षपात जैसे हो जनता की आंखों

में धूल झोंक कर उनकी कुर्सी कायम रहे। इससे दलगत राजनीति का अत्यन्त ही वीभत्स रूप गांवों तक जा फैला। दो राष्ट्र के सिद्धान्त वालों का जिन्होंने समर्थन किया था तथा जिससे देश का बंटवारा हुआ था उन्हें बढ़ावा दिया जाने लगा। इससे एक नयी साम्प्रदायिकता फूटी। उसकी परवाह नहीं की गयी। जवाहर लाल नेहरू के भावनात्मक एकता के सिद्धान्तों को शब्दों में ही सीमित रखा गया। इस अधोगति के खिलाफ स्वच्छ, ईमानदार और देश के भविष्य से खेल न करने वाले विकल्प दल को बनाने की कोशिश यदि सफल नहीं भी हुई तो श्लाघ्य होगी, यह सोच कर और उसके हर पहलू को सांगोपांग जांच कर विभिन्न दलों के साथ उन्नीस मुद्दों के संयुक्त कार्य-क्रम की एक योजना बनी। उसी कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त विधायक दल गठित हुआ। चौधरी चरण सिंह सर्व-सम्मति से उसके नेता चुने गये। प्रशासनिक कार्य की सुगमता और विभिन्न योजनाओं के कामों का समन्वय करने के लिए दलों की एक सम्पर्क समिति नियुक्त की गयी। इस तरह 3 अप्रैल सन् 1967 को चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में संयुक्त विधायक दल के मंत्रिमंडल ने शपथ ग्रहण की।

यहां एक उल्लेख जरूरी है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बाद में अपने एक सार्वजनिक भाषण में चौधरी चरण सिंह पर यह आरोप लगाया कि मुख्य मंत्री बनने के लिए ही चौधरी साहब ने कांग्रेस छोड़ी। ऊपर के विवरण से यह बिलकुल साफ है कि आरोप नितांत थोथा है। कांग्रेस पार्टी ने स्वयं चौधरी साहब को मुख्यमंत्री बनाने की अथक कोशिश की। अगर मुख्यमंत्री ही बनना उनका उद्देश्य होता तो कांग्रेस दल के ही मुख्यमंत्री बन गये होते। उन्होंने तो विरोधी दलों के आग्रह को भी पहले अमान्य कर दिया था। अपने 8-1-77 के पत्र में (परिशिष्ट स) पर श्रीमती गांधी को उन्होंने साफ-साफ लिखा है कि उनका गांधीवादी आर्थिक दृष्टिकोण कांग्रेस की पूंजी-मूलक अर्थनीति से कभी मेल नहीं खा पाया और कांग्रेस में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेईमानी चतुर्दिक फैली अनैतिकता से निराश होकर उन्होंने कांग्रेस छोड़ी। यह परिस्थितियों से उत्पन्न क्रांतिकारी और साहसिक कदम था। सन् 1969 के चुनावों के बाद बंगाल, बिहार और हरियाणा में संयुक्त विधायक दल की सरकारें बन चुकी थीं। बंगाल के श्री अजय मुखर्जी, बिहार के बाबू महामाया प्रसाद सिन्हा, मध्य प्रदेश के श्री तख्तमल जैन, राजस्थान के श्री कुम्भाराम आर्य और सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय हुमायूं कबीर ने कुछ दिनों पहले जन कांग्रेस की स्थापना की थी। चौधरी चरण सिंह का दल भी पहले जन कांग्रेस कहलाया। बाद में नवम्बर 1967 में इन्दौर में भारतीय क्रान्ति दल का गठन हुआ। यह दल कांग्रेस के विरुद्ध अभिनव क्रान्ति का आह्वान था। जन कांग्रेस और क्रान्ति दल के मूल सिद्धान्त को यों व्यक्त किया गया था कि मौजूदा कांग्रेस पार्टी बुनियादी कांग्रेस के उन सभी सिद्धान्तों के विपरीत तथा विरोध में है जो स्वाधीनता के पहले बुनियादी कांग्रेस की रीढ़ थी।

चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्री बनते ही उत्तर प्रदेश में प्रसन्नता की लहर एक छोर से दूसरे छोर तक बह गयी। उत्तर प्रदेश के बाहर भी उसका अपार स्वागत हुआ। यह सोचा कि कांग्रेस का एक जोरदार विकल्प तो निकला। उत्तर प्रदेश में संविद सरकार का शासन लाखों-लाखों कण्टों की तुमुल हर्षध्वनि से शुरू हुआ। जन-जन का हृदय नयी क्रान्ति की ज्वाला से दमक उठा। संविद सरकार के विभिन्न घटकों की सदस्य संख्या निम्न थी—जन कांग्रेस-17, जनसंघ-99, संसोपा-45, कम्युनिस्ट (मा)-1, कम्युनिस्ट दल-14, स्वतंत्र पार्टी-11, प्रसोपा-11, रिपब्लिकन-7, निर्दलीय 16, सोशलिस्ट-1 तथा हिन्दू महासभा-1।

घटकों ने सरकार को बड़े उत्साह से चलाने की शुरुआत की। लेकिन राजनैतिक अनुभव की कमी के कारण सभी घटक छोटे से छोटे भी, अपना राग तीव्रतम स्वर में इस तरह अलापने लगे कि दूसरों का राग दबा रहे। सभी घटक उन्नीस मुद्दों के कार्यक्रम को अपने-अपने ढंग पर कार्यान्वित करने लगे। कुछ दिनों में वे मुद्दों को भूल कर अपने प्रभाव को बढ़ाने में ही लग गये। जनसंघ अखिल भारतीय दल के रूप में उभर रहा था। उसके संसदीय दल के नेता उप मुख्य मंत्री बनाये गये थे। यह दल अपने को सर्वोपरि मान कर चलता था। तब कांग्रेस के विरोध में एक दल बनाने की भावना उतने प्रबल रूप में नहीं पनपी थी, जितनी आपातकाल के अत्याचारों के बाद वह उभरी। घटकों के भिन्न-भिन्न रागों को एक स्वर में सजाना चौधरी चरण सिंह जैसे महान व्यक्तित्व को भी सुलभ नहीं हो सका। उल्टे मुख्य मंत्री के रूप में उनकी दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती ख्याति को प्रमुख घटक सह नहीं पाये। सच तो यह है कि उनकी उच्चस्तरीय प्रतिभा और प्रशासनिक दक्षता से वे उनसे ईर्ष्या करने लगे। केन्द्र की कांग्रेस सरकार और राज्य का कांग्रेस विधायक दल, जिसकी संख्या संयुक्त विधायक दल के सदस्यों से कुछ ही कम थी, संयुक्त विधायक दल के घटकों में फूट डालने और उसकी सरकार को गिराने की हर सम्भव चेष्टा कर रहे थे। तोड़-फोड़ और दल-बदल की कांग्रेसियों ने वह परम्परा चलायी जो सार्वजनिक राजनैतिक जीवन में लज्जा और क्षोभ का अभूतपूर्व कारण बनी। इससे संविद सरकार की नींव हिल गयी। अभी साढ़े दस महीने भी नहीं बीते थे कि आपसी ईर्ष्या और कलह से सरकार के टूटने की नौबत आ पहुंची।

उसके विघटन का एकमात्र कारण उसमें शामिल घटकों की घोर हठवादिता थी। प्रायः सभी घटक उन्नीस मुद्दों में शामिल अपने दल के कार्यक्रमों को एकदम कार्यान्वित करना चाहते थे। भारतीय क्रान्ति दल की यह दलील कि एक बारगी सभी काम नहीं किये जा सकते, उन्हें पसन्द नहीं आई। वे उन कामों की सही प्राथमिकता करने से भी कतराये। उनका उद्देश्य अपनी-अपनी घोषित योजनाओं का प्रचार कर अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना था। वे मुख्य मंत्री की सार्वजनिक रूप से अनर्गल टीका-टिप्पणी

करने लगे। कम्युनिस्ट पार्टी हड़ताली राज्य कर्मचारियों और मजदूरों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही को समाप्त कर सम्बन्धी मुकदमों को वापिस ले लेने की मांग पर मंत्रिमंडल से अलग हो ही चुकी थी। संसोपा के मंत्री अपने दल के गया अधिवेशन में पारित प्रस्तावों को (1) $6\frac{1}{4}$ एकड़ जोत पर लगान माफ हो, (2) सब राजनैतिक कैदी तत्काल रिहा कर दिये जायें तथा (3) शासन का सौ फीसदी काम हिन्दी में हो, तत्काल लागू करने पर बेहद जोर दे रहे थे। संसोपा के मंत्रियों ने दिल्ली के हिन्दी आन्दोलन में कानून भंग कर अपने को गिरफ्तार कराया था और वहां की जेल में बन्दी बन कर भी उत्तर प्रदेश के अपने विभागों का काम मंत्री के रूप में चलाने की हास्यास्पद कोशिश की थी। उन्होंने यह एलान भी किया था कि केन्द्र के किसी मंत्री के उत्तर प्रदेश आने पर उसे गिरफ्तार कर लिया जायेगा। प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी उन्हीं दिनों वाराणसी और रायबरेली के दौरे पर आने वाली थीं। संसोपा ने उनका घेराव कर उन्हें गिरफ्तारी में ले उन्हें तथाकथित जनता की अदालत में पेश करने की घोषणा की थी। उधर संविद का संख्या में सबसे बड़ा घटक जनसंघ हाल ही में हुए मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन से चौधरी चरण सिंह के खिलाफ ताल ठोंक कर विष वमन कर रहा था। जनसंघ विधायक दल के नेता श्री राम प्रकाश, उप मुख्य मंत्री थे, उन्होंने संसोपा के साथ मिलकर चौधरी चरण सिंह को संविद के नेता पद से हटाने की खुल्लमखुल्ला मांग की।

इस विस्फोटक खींचातानी में चौधरी चरण की दशा बहुत विपन्न थी। उन्होंने इस विरोधी वातावरण में अदम्य साहस से मुख्य मंत्री के कर्त्तव्य को निबाहा। तारीख 2 व 3 जनवरी 1968 को प्रधान मंत्री के रायबरेली के दौरे में वह स्वयं उनके साथ रहे। वहां प्रधान मंत्री के खिलाफ संसोपा के उग्र प्रदर्शनकारियों को उन्होंने लाठी चार्ज और आंसू गैस से तितर-बितर कराया। वाराणसी भी वे प्रधानमंत्री के साथ गये और वहां शान्ति व्यवस्था कायम रखने के लिए संसोपा के नेताओं को एहतियाती कार्यवाही में गिरफ्तार करा लिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में, जहां प्रधान मंत्री का कार्यक्रम था, उन्होंने पुलिस और पी० ए० सी० दल को शान्ति तथा सुव्यवस्था को कायम रखने के लिए पांच दिन तक तैनात रखा। संसोपा मुख्य मंत्री की सफल नीति पर और क्षुब्ध हुआ।

संसोपा और जनसंघ दोनों यह जानते थे कि चौधरी चरण सिंह के महान व्यक्तित्व के निर्देशन के बिना संविद ताश के महल की तरह भरभरा कर बिखर जायेगा। उन्हें शासन का कोई अनुभव नहीं था। वे यह नहीं जानते थे कि ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध की इंग्लैण्ड की मिलीजुली राष्ट्रीय सरकार को लक्ष्य कर संयुक्त प्रणाली से काम करने का एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। उन्होंने कहा कि प्रधान मंत्री सब मंत्रियों के बराबर होते हुए भी नम्बर एक पर होता

है। दूसरे सभी मंत्री दो, तीन या चार पर होते हैं। इन सबके लिए एकजुट होकर काम करने का यह तरीका है कि दो, तीन या चार अपना काम सम्पन्न करते समय नम्बर एक—टीम के कप्तान के दृष्टिकोण का सर्वोपरि ध्यान रखें। विभिन्न दलों के मंत्री ठीक इसका उल्टा आचरण कर रहे थे। चौधरी चरण सिंह ने संविद के सदस्यों को दिनांक 25 जनवरी सन् 1968 को एक पत्र सम्बोधित किया, जिसमें अपनी मानसिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि "विगत अप्रैल में नेता पद ग्रहण करने के बाद से मुझे एक सप्ताह का भी चैन नहीं मिला, जिसमें आज एक तो कल दूसरे घटक ने कोई न कोई समस्या न खड़ी कर दी हो।" दोषी राज कर्मचारियों, अपराधी राजनैतिक बन्दियों तथा सरकार में शामिल होकर अपनी ही सरकार के खिलाफ सत्याग्रह या दूसरे आन्दोलन खड़ा करने पर उन्होंने लिखा कि "कानून का पालन सभ्य समाज का मूल आधार है और उसके बिना अराजकता फैल जाएगी।" चौधरी साहब जैसे महान जनसेवक में उत्सर्ग की शक्ति थी, अराजकता फैलाने की नहीं। संसोपा, जनसंघ और दूसरे घटकों को उपर्युक्त तर्क ग्राह्य नहीं हुए। संसोपा ने परिस्थिति का लाभ उठा कर $6\frac{1}{4}$ एकड़ लगान की माफी के सवाल पर भी भारी बावेला मचाया। जनसंघ ने इस मांग के विरोध में उतना ही ऊंचा शोर मचाया। संसोपा ने समन्वय समिति की बैठकों का बहिष्कार किया।

आपसी खींचातानी में कांग्रेस को सत्ता में वापस न आने देने का ध्यान भी लुप्त हो गया। चौधरी चरण सिंह इस आपस की खींचातानी से बहुत मर्माहत हुए। कोई घटक यह नहीं चाहता था कि चौधरी चरण सिंह नेतृत्व पद से इस्तीफा दें। उस ऊंचाई का सर्व दक्ष नेता मिलता कहां? संसोपा की उग्र राजनीति ने परिणाम की कल्पना भी नहीं की थी। कहीं उनके मन में भी छिपा था कि चौधरी चरण सिंह त्याग पत्र नहीं देंगे। चौधरी चरण सिंह ने किन्तु विवश होकर 17 अप्रैल सन् 1968 को मुख्य मंत्री पद से अपना त्यागपत्र राज्यपाल के पास भेज दिया। दूसरे दिन 18 अप्रैल को बजट का सत्र शुरू होने वाला था। प्रदेश की जनता और संविद के सभी घटक स्तंभित रह गये। वे कांग्रेसी प्रचार के भ्रम में थे कि चौधरी साहब मुख्य मंत्री पद नहीं छोड़ेंगे।

चौधरी साहब निश्चय ही संविद सरकार को भंग नहीं करना चाहते थे। किसी तरह तो कांग्रेस के विकल्प की रूप रेखा उभरनी शुरू हुई थी। उन्होंने अपने त्यागपत्र में राज्यपाल को साफ-साफ लिखा था कि संविद के नये नेता को वे अपना समर्थन देंगे। उन्होंने यह भी लिखा था कि अगर नया नेता न चुना जा सके तो विधान सभा को भंग कर मध्यावधि चुनाव कराया जाय। नेता न चुने जाने की संभावना इसलिए उभरी कि विभिन्न घटक शायद किसी भी व्यक्ति विशेष को नेता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे जिससे उनका राग मन्द न पड़े। ठीक यही स्थिति सामने आयी। घटकों

की पहली प्रतिक्रिया चौधरी चरण सिंह को पुनः नेता पद पर लौटाने की हुई। उन्होंने चौधरी साहब से बड़ी विनम्रता से इसके लिए अनुनय किया। चौधरी चरण सिंह को विभिन्न घटकों के कार्य-कलाप का तीखा अनुभव हो चुका था। कम्युनिस्ट पार्टी और संसोपा के मंत्री पहले भी त्याग पत्र दे चुके थे। संसोपा के मंत्रियों ने मंत्री की हैसियत से कानून तोड़ा था। उन्होंने प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को उत्तर प्रदेश में गिरफ्तार करने की असफल कोशिश की थी। इन सबसे चौधरी साहब इतने खिन्न थे कि उन्होंने त्यागपत्र देने के बाद एक वक्तव्य में कहा था कि—"मेरी दशा उस जानवर की सी हो गयी थी, जो बोझ ढोते-ढोते आजिज आ गया था और हरी घास चरने की स्वतंत्रता के लिए लालायित था।" उन्होंने नेता पद पर लौटने से इनकार कर दिया। घटकों ने इसकी भी आशा नहीं की थी। वे चौधरी चरण सिंह को कितना कम जानते थे? निराश होकर उन्होंने श्री राम चन्द्र विकल को नेता चुना। श्री विकल बहुत ही सीधे-सादे इंसान थे। चौधरी साहब और उनका दल उनके लिए इसलिए तैयार नहीं था कि उग्रवादी दल उनसे उल्टे सीधे काम करा कर प्रशासन और विकास के कार्यों को ठप्प कर देंगे। चौधरी चरण सिंह ने राज्य के हित में अपना मत राज्यपाल को सूचित कर दिया। घटकों में खलबली मच गयी और नये नेता की तलाश दुबारा शुरू हुई। राज्य को कांग्रेसी कुशासन में लौटाने को कोई तैयार नहीं था, चौधरी साहब भी नहीं। तब बदायूं के एक विधायक, जो जिला न्यायाधीश के पद से अवकाश प्राप्त कर सार्वजनिक जीवन में आये थे, नेता चुना गया। चौधरी चरण सिंह और उनके दल ने उन्हें पूरा समर्थन दिया। राज्यपाल ने किन्तु संयुक्त विधायक दल के बहुमत के विपरीत और नये नेता के सर्वसम्मति से चुने जाने पर भी राज्य में 15 अप्रैल सन् 1968 को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। निश्चय ही ऐसा केन्द्र के इशारे पर किया गया। संविद के घटकों की आंखें आश्चर्य से कोटरों के बाहर निकल आयीं। कांग्रेस पार्टी अपनी प्रसन्नता छिपा नहीं सकी। राज्य का जन साधारण दुःखी हुआ। उसे कांग्रेस के आजादी के बाद से चले आ रहे लम्बे कुशासन से त्राण मिला था। चौधरी चरण सिंह का नेतृत्व उनके लिए, किसान मजदूर सबके लिए वरदान था। उन्होंने अपना सिर ठोंक लिया—नया सूरज निकला ही था कि घनघोर काली घटाओं ने उसे ढंक लिया।

संविद के अल्पकालीन अवधि में चौधरी चरण सिंह के शासन ने प्रत्येक विभाग और जनता जनार्दन में स्वच्छ और दक्ष प्रशासन की बिजली जला दी। घटकों में समर्पित भावना से काम करने का अलख भी जागा। वे टकराये दलों के स्वार्थ और राजनैतिक अनुभव की कमी से। अन्यथा सभी विभागों के कार्यकलाप में चौधरी चरण सिंह के नाम की एक नयी हवा बह उठी। सभी घटकों ने अपने-अपने विभागों का काम बड़ी दक्षता और तत्परता से शुरू किया। ऊंचे राजपत्रित अधिकारियों और कर्मचारियों के

विरुद्ध जहां कठोर कार्यवाही की गयी, वहां मंत्रियों, विधायकों, जिला परिषदों और दूसरी स्वायत्त इकाइयों के अध्यक्षों के खिलाफ प्राप्त आरोपों पर पहले अध्यादेश, बाद में कानून द्वारा जांच कराने की स्थायी समिति गठित की गयी। यह भ्रष्टाचार पर तब तक का कठोरतम प्रहार था। इस कदम की जन-जन में सराहना हुई। एक नयी आशा का क्षितिज सबकी आंखों में आ उगा। उन विभागों के जिन्हें जनता के दैनिक सम्पर्क में काम करना पड़ता था, नियमों आदि का सरलीकरण कर उन्हें प्रखर रूप में जनोपयोगी बनाया गया। इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि लाल फीताशाही—काम के निस्तारण में अकारण की देरी—बिलकुल मिट जाय। विभागों में प्रत्येक स्तर पर उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया, जिससे किसी अस्पष्टता या द्विअर्थी बात से बेईमानी को शरण न मिले। शासकीय विभागों े बाहर वाणिज्य, व्यापार तथा दूसरे आर्थिक विनिमय के कार्य-कलापों में होने वाले अपराधों के बारे में गुप्त सूचना इकट्ठा करने तथा उस पर समुचित कार्यवाही करने का एक संगठन बनाया गया। यह सर्वथा नया प्रयोग था। इससे राजनयिकों, राज कर्मचारियों, व्यापारियों आदि में ईमानदारी और नैतिकता का वातावरण विकसित हुआ। गरीब जनता को भी एक हद तक तात्कालिक त्राण मिला। शोषित और पीड़ित जन समुदाय प्रसन्नता से विह्वल हो उठा। ये कदम, यह प्रणाली, अभूतपूर्व थे। उसे चौधरी चरण सिंह जैसा धरती का लाल और तपोनिष्ठ ही सफलता से सम्पन्न कर सकता था। स्वच्छ, दक्ष और जनता जर्नादन के उत्थान में समर्पित शासन प्रणाली बड़े वेग से चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में उत्तर प्रदेश में पहली बार प्रभावित हुई।

चौधरी चरण सिंह के काम करने की यह विशेषता रही है कि उनकी दृष्टि से छोटी से छोटी बात भी ओझल नहीं हो पाती है और उनकी बौद्धिकता उसके पक्ष-विपक्ष के मूल को सहज ही हृदयंगम कर लेती है। अवैतनिक मजिस्ट्रेटों की परिपाटी अंग्रेजों ने सामन्तशाही बढ़ाने और अपना दबदबा कायम रखने के लिए चलायी थी। अवैतनिक मजिस्ट्रेट न्याय पद्धति में कालक्रम से भ्रष्टाचार के गढ़ भी बन चुके थे। उससे जनता को न कोई लाभ था और न वह प्रजा के सहयोग पर आधारित था। अपने अल्पकालीन मुख्यमंत्रित्व काल में चौधरी चरण सिंह ने अवैतनिक मजिस्ट्रेटों की प्रथा को समाप्त कर दिया। कांग्रेस पार्टी की सरकार भी इस प्रथा को दुबारा चालू नहीं कर सकी।

हर विभाग में विभागीय सतर्कता संगठन स्थापित किए गये और विभागाध्यक्षों को शासकीय भ्रष्टाचार की जड़ को उखाड़ फेंकने के लिए जिम्मेदार ठहराया गया। विभागाध्यक्षों का ध्यान इस ओर मुड़ने से विभागों को स्वच्छन्द बनाने में अल्पकाल में ही अपेक्षाकृत सफलता भी मिली।

गांव और वहां की जनता चौधरी चरण सिंह की प्राण की नसें हैं। कृषि उत्पादन बढ़ाने की सारी सम्भव सुविधायें गांवों तक प्राथमिकता से पहुंचायी गयीं। लघु सिंचाई योजनाओं तथा दूसरे उत्पादक कार्यों के लिए ऋण देने को सुगम और सरल बनाने के लिए नियमों में सुधार किए गये। किसानों की पैदावार, खास कर गन्ना और गुड़ आदि अर्थकरी उपजों की उचित कीमत दिलाने के लिए ठोस कदम उठाये गये। एक अप्रैल सन् 1967 को भूमि भवन कर समाप्त कर दिया गया। साढ़े छः एकड़ तक की जोत पर लगान आधा कर दिया गया, दो रुपये तक का लगान बिलकुल माफ कर दिया गया। खेती के हर साधन को किसानों के दरवाजे तक पहुंचाने की विशेष व्यवस्था की गयी। प्राथमिकता और सच्चाई से किये गये इन कामों से खेती ही नहीं किसान भी लहलहा उठे।

उसी तरह राज्य कर्मचारियों के अनुशासन और कार्य कुशलता पर जोर दिया गया। पुलिस की दक्षता, अनुसंधान और निगरानी को भी कुशल बनाने पर विशेष बल दिया गया। पुलिस को बड़े-बड़े नगरों में रेडियो सेल पहली बार प्रदान किए गये। थानेदारों की सक्षमता की गति बढ़ाने के लिए उनको घोड़ों की जगह मोटर साइकिल रखने के लिए ऋण देने का प्राविधान किया गया। थानेदारों के चुनाव में शारीरिक सुदृढ़ता और खेलकूद की प्रवीणता को भी शामिल किया गया। वर्षों से बड़ी-बड़ी मिलों और उद्योगों पर बकाया चल रहे सरकारी ऋण की वसूली नियमित ढंग पर करायी गयी। एक अत्यन्त महत्त्व का काम, जो चौधरी चरण सिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में सम्पन्न हुआ, वह न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक करना था। किसी भी आजाद देश में कार्यपालिका जो अपराधों का अनुसंधान कर उनके निवारणार्थ मुकदमे न्यायालयों में चलाती है, स्वयं न्यायिक मजिस्ट्रेट बन कर उसका फैसला नहीं करती है। यह परिपाटी भी अंग्रेजों की अपने दब-दबे और हिन्दुस्तानियों को गुलाम रखने के लिए चलायी हुई थी। चौधरी चरण सिंह ने उसे 2 अक्तूबर 67 को, गांधी जी के जन्म दिन पर, समाप्त कर न्यायपालिका को पृथक कर दिया। इससे न्याय का सच्चा महत्त्व बढ़ा और लोगों में न्याय पद्धति पर विश्वास बढ़ा। राज्य में सरकारी काम-काज में हिन्दी का प्रयोग शत-प्रतिशत कर दिया गया, विश्वविद्यालय स्तर पर बी० ए० के पाठ्यक्रम में सामान्य अंग्रेजी स्वैच्छिक बना दी गयी, उर्दू को प्रोत्साहन दिया गया और जिलों के मुख्यालयों के साथ-साथ तेईस तहसीलों में उर्दू में सरकारी गजट उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी। एक विशिष्ट काम यह भी हुआ कि जाति से जुड़े शिक्षा संस्थाओं को अनुदान न देने का निश्चय किया गया।

दस महीने की अल्प अवधि में इतना कुछ मौलिक और दूरगामी प्रभावों का काम कर लेना स्वयं में एक विशिष्टता थी। चौधरी चरण सिंह की संविद सरकार सुशासन और लोक कल्याण के कार्यों को भ्रष्टाचार मुक्त और निपुण बनाने के लिए

कृत संकल्प थी। उसने अथक कोशिश की और प्रदेश ही नहीं देश भर में अभिनव कौंध की चमक जाग गयी। ऐसे उत्साह से शासन का कार्य पहले कभी नहीं चला था। यह सोच और लगन पहले होती तो देश की दशा आज दूसरी होती—पचास प्रतिशत लोग आज गरीबी की रेखा के नीचे जीवन नहीं बिताते। राजकीय कर्मचारियों में वेतन की असमानता कम नहीं थी। आर्थिक दृष्टिकोण से वे फिर भी देश के बहुसंख्यक गरीब किसानों-मजदूरों की तुलना में सुरक्षित थे। उनमें आर्थिक विषमता के कारण असंतोष का होना स्वाभाविक था। लेकिन आर्थिक रूप से सुरक्षित होकर उनमें सम्पत्ति बटोरने के लिए भ्रष्टाचार का होना नितान्त निंदनीय था। चौधरी चरण सिंह के मुख्य मंत्रित्व काल में उन्हें आत्म निरीक्षण और भ्रष्टाचार के पाप से मुक्त होने के लिए विवश किया। उद्योगपतियों, व्यापारियों, पेशेवालों जैसे वकील, डॉक्टरों की अतुल कमाई भी सर्वथा न्यायोचित नहीं थी। लेकिन उनके कारण राज कर्मचारी धन कमाने के लिए भ्रष्टाचारी बनें, यह देश के लिए बड़े खतरे की सूचक थी। राज्य कर्मचारियों को भ्रष्टाचार मिटाने के लिए सोचना पड़ा। भ्रष्टाचार का पूंजीवादी व्यवस्था में मिटना आसान कदापि नहीं, लेकिन वह रोका और कम किया जा सकता है। चौधरी साहब के नाम से भ्रष्टाचार के खिलाफ जो हवा बही, भ्रष्टाचार जिस तरह दुबक कर छिपने लगा, वह उनके व्यक्तित्व का इस संबंध में भविष्य के लिए दिशा निर्देश था। चौधरी चरण सिंह ईमानदार प्रशासन और गरीबी के पाप को गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुरूप मिटाने के प्रयासों में देश भर के प्रेरणा बने। एक शिक्षित किन्तु अभावग्रस्त उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले के किसान ने ताल ठोंक कर कहा था—"सारे राज्यों में एक-एक चरण सिंह पैदा करो। गरीबी मिट जाएगी और भ्रष्टाचार का भूत भाग जाएगा।" उसकी बात सोलह आना सच थीं।

चौधरी चरण सिंह ने हिन्दुस्तान के सबसे बड़े राज्य में ईमानदार प्रशासन व्यवस्था की नींव डाली। उन्होंने अनुसूचित जाति के एक सदस्य को पहले पहल राज्य लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त किया। उनके मंत्रिमंडल में हरिजनों के अतिरिक्त पिछड़े वर्गों में से चार मंत्री बनाये गये। उनमें पासी समाज का एक प्रतिनिधि पहले-पहल मंत्रिमंडल में आया ओर मंत्री बना था। गरीब, हरिजनों और पिछड़े वर्गों को उन्होंने इस तरह पहले-पहल व्यापक प्रोत्साहन दिया।

उनकी प्रतिभा का प्रभाव ऐसा था कि उनके मुख्य मंत्री का कार्य भार संभालते ही महंगाई में गिरावट आ गयी। जमाखोर और कालाबाजारिये व्यापारी उनके नाम से कांपते थे। किसानों को उचित मूल्य दिलाने के लिए उन्होंने गेहूं की सरकारी खरीद शुरू की और प्रति क्विटंल गेहूं का दाम 80/85 रुपये रखा। खाद्य पदार्थों की अधिप्राप्ति की उन्होंने एक योजना भी बनायी, जिसका राज्य कांग्रेस ने घोर विरोध किया। छः साल बाद केन्द्र सरकार ने इस योजना को अपनाया। बाद में दूसरे राज्यों ने भी

उसे अपनाया। चौधरी चरण सिंह ने कृषि की हर उपज का विशेष कर गन्ने का पहले से कहीं अधिक मूल्य दिया।

उनके कार्यकाल में राज्य कर्मचारियों में हर स्तर पर अनुशासन रहा। उन्होंने चौधरी साहब के मुख्य मंत्रित्व काल में कोई हड़ताल नहीं की। इसका कारण भय नहीं था। चौधरी चरण सिंह साधारण स्तर के कर्मचारियों की हर समस्या और कठिनाइयों पर ध्यान देते थे। राज्य कर्मचारी सच्चा निर्देशन पा कर अपना कर्तव्य कुशलता से निभाते थे। चौधरी चरण सिंह को ऊंचा से ऊंचा अधिकारी भी बहका नहीं सकता था। वे विषय वस्तु को पूरी तरह समझ कर ही कोई निर्णय लेते थे। उच्चाधिकारी भी इसलिए सजग रहते थे। राज्य के किसी उद्योग या कारखाने में भी मजदूर संगठनों ने हड़ताल नहीं की। मजदूर संगठन विभिन्न दलों के थे। चौधरी चरण सिंह की कुशल कार्य प्रणाली से प्रभावित होकर उन्होंने कभी हड़ताल नहीं की। इससे औद्योगिक उत्पादन बढ़ा। चौधरी साहब ने उच्च-स्तरीय सार्वजनिक व्यक्तियों के विरुद्ध अध्यादेश द्वारा एक स्वतंत्र जांच एजेन्सी का गठन किया। केरल और उड़ीसा सरकारों ने अपने यहां ऐसी एजेन्सियां बनायीं। परन्तु चौधरी चरण सिंह के त्यागपत्र के बाद ही राष्ट्रपति ने उसे रद्द कर दिया।

शिक्षा संस्थाओं की दशा यह हो गयी थी कि विद्यार्थी संघों ने कालेजों, विश्वविद्यालयों को राजनीति का अखाड़ा बना दिया था। साल में हमेशा हड़ताल ही हड़ताल हुआ करती थी। इससे पढ़ाई-लिखाई तो बन्द रहती ही थी, विद्यार्थियों में हिंसा की वृत्ति भी उभरने लगी थी। विद्यार्थियों के विरुद्ध जाना साहस का काम था। चौधरी चरण सिंह ने एक अध्यादेश के अन्तर्गत यह शासकीय व्यवस्था की कि शिक्षण संस्थाओं में छात्र संघ का होना अनिवार्य नहीं, प्रत्युत ऐच्छिक होगा। अधिकांश विद्यार्थी पढ़ने लिखने के प्रेमी थे। छात्र संघों के राजनीति प्रेरक पदाधिकारी ही हड़ताल आदि व्यावधानों को उपस्थित करते थे। ऐच्छिक होकर छात्र संघों की उद्दंडता काफी हद तक मिट गयी। चौधरी साहब के समय में हड़ताल हुई ही नहीं। उन्होंने गुण्डागर्दी रोकने के लिए गुण्डागर्दी नियंत्रण अधिनियम को भी बनाया और उसे सफलता से लागू किया।

एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि राज्य में साम्प्रदायिक दंगों का बिलकुल रुक जाना था। उन दिनों बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में गम्भीर साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। उनके मुख्य मंत्रित्व काल में उत्तर प्रदेश में कहीं भी साम्प्रदायिक दंगे का न होना उनके अल्प संख्यकों के प्रति सद्भावना और प्रेम का परिचायक है।

उनके अल्प अवधि के मुख्य मंत्रित्व काल में सारा देश उनकी कुशल और दृढ़ प्रशासनिक क्षमता का लोहा मानने लगे। यह दृढ़ता तथा कुशलता इसलिए आई कि

वे एक उच्च गांधीवादी थे और साथ ही सरदार पटेल जैसे कार्य कुशल। चौधरी चरण सिंह के निजी कमरे में चार तैल चित्र अब भी सुशोभित हैं। वे चित्र हैं— महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द और सरदार वल्लभ भाई पटेल के। वही ज्योतिपुंज उनके जीवन के प्रेरणा स्रोत हैं।

(2)

राष्ट्रपति शासन को समाप्त करने के लिए 1969 में उत्तर प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हुए। उसमें भारतीय क्रांति दल के 98 सदस्य विजयी हुए। कांग्रेस को पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त हुआ था। विधायकों की तोड़-फोड़ के बाद श्री चन्द्रभान गुप्त के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी। चौधरी चरण सिंह को मुख्य विरोधी दल की भूमिका निभानी पड़ी। मई सन् 1969 में राष्ट्रपति डॉक्टर जाकिर हुसेन दिवंगत हो गये। नये राष्ट्रपति के चुनाव पर कांग्रेस की राजनीति ने एक नया मोड़ ले लिया। कांग्रेस दो गुटों में विभाजित होने को अग्रसर हुई। यहीं से पुराने मान्य लीडरों के कांग्रेस से अलग हो जाने से श्रीमती इन्दिरा गांधी के एकतंत्र प्रणाली की शासन पद्धति की शुरुआत होती है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पहले श्री नीलम संजीव रेड्डी का नाम राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्तावित किया। बाद में वह स्वतंत्र उम्मीदवार श्री वी० वी० गिरि को समर्थन देने लगी। कांग्रेस के पुराने नेताओं ने श्री रेड्डी का समर्थन किया। देश के बुद्धिजीवियों और स्वतंत्र विचारकों ने तीसरे उम्मीदवार श्री चिन्तामणि देशमुख का समर्थन किया। भारतीय क्रांतिदल ने श्री देशमुख का समर्थन किया। अपनी दूसरी वरीयता का मत दल ने श्री वी० वी० गिरि को दिया। श्री गिरि चुनाव जीत गये। श्रीमती गांधी की दुरंगी चाल कांग्रेस के उच्च कमांड को पसन्द नहीं आई। उन्हें कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। श्रीमती गांधी ने श्री जगजीवन राम की अध्यक्षता में अलग कांग्रेस बना ली। कांग्रेस के इस विभाजन का उत्तर प्रदेश पर विशेष असर पड़ा। दोनों कांग्रेस के नेता चौधरी चरण सिंह के पास सरकार बनाने का प्रस्ताव लेकर दौड़ने लगे।

1969 में हुए अपने कानपुर अधिवेशन में भारतीय क्रांति दल ने ग्राम परक आर्थिक नीति पर देश को शक्तिशाली बनाने के लिए बल दिया था। उस प्रस्ताव में कहा गया था कि कृषि की उपज बढ़ा कर और छोटे-छोटे उद्योगों को गांव में लगा कर

शहरों में बढ़ती हुई आबादी के दबाव को रोका जा सकता है। इसीसे बेरोजगारी भी मिटेगी। इस स्पष्ट नीति की घोषणा पर भी कांग्रेस के दोनों दल चौधरी साहब के पास दौड़ रहे थे, क्योंकि यह प्रायः निश्चित था कि श्री चन्द्रभान गुप्त की सरकार 11 फरवरी को प्रारम्भ होने वाले बजट सत्र में गिर जायेगी। श्रीमती इन्दिरा गांधी पंडित कमलापति त्रिपाठी को मुख्य मंत्री बनाना चाहती थीं। श्री गुप्त ने अपनी सही स्थिति का अनुमान लगाकर 10 फरवरी को अपनी सरकार का इस्तीफा दे दिया। उन्होंने चौधरी चरण सिंह को मुख्य मंत्री पद के लिए प्रस्तावित किया और क्रांति दल को अपने दल का समर्थन देने का वादा किया। दूसरी ओर श्रीमती गांधी ने अपने प्रतिनिधि श्री द्वारका प्रसाद मिश्र को लखनऊ भेजा। श्री मिश्र जी ने चौधरी चरण सिंह से भारतीय क्रांति दल की सरकार बनाने का आग्रह किया और उन्होंने इन्दिरा कांग्रेस के पूर्ण समर्थन का वादा किया। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि चौधरी साहब की आर्थिक नीति में कोई बाधा नहीं उपस्थित की जायेगी। उक्त आश्वासन पर एक साधु की तरह विश्वास करके चौधरी साहब 17 फरवरी सन् 1970 को भारतीय क्रांति दल के नेता के रूप में मुख्य मंत्री बने। उनकी सरकार में मई और जुलाई 70 में इन्दिरा कांग्रेस के मंत्री भी शामिल किए गये। पूरे मंत्रिपरिषद् में 13 इन्दिरा कांग्रेसी थे और 10 क्रांति दल के। पं० कमलापति त्रिपाठी इन्दिरा कांग्रेस के प्रान्तीय अध्यक्ष थे। वे मंत्रिमंडल में शामिल नहीं हुए। शायद अपने परिवार वर्ग की सुप्रसिद्धि पर चौधरी साहब के रुख से वे परिचित थे। इसलिए उन्होंने मंत्रिपरिषद् से बाहर रहना ही विवेक माना।

नयी सरकार ने नये उत्साह से संविद के अधूरे कार्यक्रम को पूरा करना शुरू किया। कानून की प्रतिष्ठा और उसमें जनमानस के विश्वास को तत्काल प्राथमिकता दी गयी। पुलिस को चुस्त बनाया गया और गुण्डा विरोधी अभियान को जोरों से चलाया गया।

कृषि की उपज बढ़ाने को फिर सर्वोपरि प्राथमिकता दी गयी। इसके लिए उर्वरकों से बिक्री कर उठा लिया गया। राष्ट्रीय कृत बैंकों से ऋण की अधिक सुविधा दिलायी गयी, भूमि सुधार बैंकों को चुस्त और उपयोगी बनाया गया। इसी क्रम में साढ़ेतीन एकड़ वाली जोत के किसानों का लगान माफ किया गया। इससे आठ लाख जोतों को लाभ पहुंचा। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को खेती योग्य भूमि देने के कार्यक्रम को पुष्ट किया गया। इतना कि छः महीनों में ही (जून तक) 6,26,338 एकड़ भूमि के सीरदारी पट्टे और 31,188 एकड़ के आसामी पट्टे दिए गए। सीलिंग से प्राप्त जमीन भी भूमिहीन मजदूरों को जो प्रायः सभी हरिजन वर्ग के थे दी गयी। उन्हीं दिनों श्रीमती गांधी ने देशी रियासतों के राजाओं के "प्रिवी पर्स" को समाप्त करने का संसद में प्रस्ताव किया। चौधरी चरण सिंह ने सरदार पटेल के स्थायी अनुबन्ध को झूठी

ख्याति के लिए समाप्त करने का विरोध किया। उनके दल के संसद सदस्यों ने "प्रिवी पर्स" की समाप्ति के विरोध में वोट दिया। प्रस्ताव को निर्धारित बहुमत नहीं प्राप्त हो सका। इससे चिढ़कर श्रीमती गांधी और उनके दल ने उत्तर प्रदेश में सार्वजनिक रूप से चौधरी चरण सिंह की खुल्लमखुल्ला आलोचना शुरू कर दिया। एक अजीब विडम्बना पैदा हुई। इन्दिरा कांग्रेस के लोग मंत्रिमंडल में रह कर राजकाज चला रहे थे और बाहर वे हड़ताल, घेराव और आन्दोलन की धमकियां दे रहे थे। राय बरेली की एक सार्वजनिक सभा में स्वयं श्रीमती गांधी ने चौधरी चरण सिंह के विरोध को प्रोत्साहित किया। एकतंत्री नेता का इशारा पाकर मंत्रियों ने जोर पकड़ा। चौधरी चरण सिंह ने राज्यपाल से संस्तुति की कि कांग्रेस मंत्रियों को तत्काल पदों से हटा दिया जाय। उनकी मान्यता थी कि वे विधान सभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त कर लेंगे। लेकिन राज्यपाल ने विधान सभा को भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की संस्तुति की। स्वच्छ राजनीति का स्थान घृणित राजनीति ने ले लिया। श्रीमती गांधी ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि विधान सभा का सत्र न हो। उन्हें चौधरी साहब के त्यागपत्र की आशा थी। चौधरी चरण सिंह ने त्यागपत्र देने से इनकार कर दिया। वे अब भी विधान सभा में विश्वास प्राप्त करना चाहते थे। श्रीमती गांधी की सरकार ने तब राज्यपाल से एक रिपोर्ट मंगा कर चौधरी चरण सिंह की सरकार को बर्खास्त करने की अनुशंसा की। राष्ट्रपति उन दिनों रूस, हंगरी आदि देशों की यात्रा पर गए थे। हवाई जहाज से विशेष प्रतिनिधि द्वारा राष्ट्रपति से जनतांत्रिक सरकार को बर्खास्त करने का आदेश प्राप्त करना ऐतिहासिक और अभूतपूर्व घटना थी। राष्ट्रपति के आदेश में कहा गया था कि राज्यपाल की संस्तुति पर राष्ट्रपति ने अपने विवेक से पूरी तरह संतुष्ट होकर राज्य के मंत्रिमंडल को बर्खास्त किया है। 2 अक्तूबर को मंत्रिमंडल बर्खास्त किया गया। यह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पुण्यतिथि पर उनके प्रति अद्भुत श्रद्धांजलि थी।

श्रीमती इन्दिरा गांधी सदस्यों को बहला फुसला कर, लालच से अपने दल में लाने की पद्धति को अपना कर सब राज्यों में अपना प्रभाव कायम करना चाहती थीं। उत्तर प्रदेश में चौधरी चरण सिंह ने यह नहीं होने दिया। संगठन कांग्रेस के सहयोग से उत्तर प्रदेश में श्री त्रिभुवन नारायण सिंह के नेतृत्व में नयी सरकार का गठन हुआ। इस तरह उत्तर प्रदेश में विरोध पक्ष सत्ता पक्ष में आ गया। श्रीमती गांधी का चक्र भी तेजी से घूम रहा था। "प्रिवी पर्सों" को खत्म कर और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर वे अपने को प्रगतिशील नेता बता रही थीं। अशिक्षित तथा गरीबी के मारे देश पर यह छलावा छा गया। लोग भूल गये कि श्रीमती गांधी के शासन काल में देश में पूंजीवाद इस तेजी से फैला कि उन्हें पूंजीपतियों का पोषक कहना गलत नहीं होगा। श्रीमती गांधी ने लोक सभा को भंग कर 71 में चुनाव की घोषणा कर दी। चुनावों

के पूर्व चौधरी चरण सिंह विरोधी दलों को एक झण्डा, एक मंच और एक निशान पर लाना चाहते थे। विरोधी दलों ने अपने अस्तित्त्व को विलीन करना समुचित नहीं माना। नतीजा, सामने आया। श्रीमती गांधी के "गरीबी हटाओ" नारे से, यद्यपि देश में गरीबी बेतहाशा बढ़ रही थी, वह चुनाव जीत गयीं। विरोधी दल बुरी तरह हारे।

सत्ता का नंगा नाच शक्ति के दुरुपयोग से शुरू हुआ। तोड़-फोड़ और दल-बदल की अभूतपूर्व विभीषिका से बौद्धिक जगत त्रस्त हो उठा। इसी आधार पर बहुमत बना कर पं० कमलापति त्रिपाठी को उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री बनाया गया। वे पुलिस पर नियंत्रण करने में असमर्थ रहे। सन् 1973 के पी० ए० सी० विद्रोह के कारण उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। कुछ दिनों के अल्पकालीन राष्ट्रपति शासन के बाद नवम्बर 73 में श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा मुख्यमंत्री बने। फरवरी 1974 में विधान सभा के चुनाव हुए। भारतीय क्रांति दल, मुसलिम मजलिस और सोशलिस्ट पार्टी संयुक्त रूप से क्रांति दल के हलधर चिन्ह पर चुनाव लड़े। उन्हें 107 सीटें मिली। चौधरी चरण सिंह ने इस बार भी सभी विरोधी दलों को राष्ट्रीय ध्रुवीकरण के लिए प्रेरित किया था। पांच दल, लोकतान्त्रिक कांग्रेस, स्वतंत्र पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, लोकतान्त्रिक दल और भारतीय क्रांति दल अपने-अपने अस्तित्व को विलय कर भारतीय लोक दल में एक हो शामिल हुए। संगठन कांग्रेस और जनसंघ भारतीय लोक दल में विलय नहीं हुए। उन्होंने उससे तालमेल कर उसे राजनैतिक क्षेत्र में सशक्त बनने में मदद की।

सन् 1974 के अन्त और 75 के शुरू में देशव्यापी असंतोष, जानलेवा महंगाई, घोर भ्रष्टाचार और बढ़ती गरीबी तथा सर्वत्र व्याप्त असामाजिक अव्यवस्था के विरुद्ध गुजरात के छात्रों ने आन्दोलन छेड़ दिया। उनकी मांग वहां की विधान सभा को भंग करना था। गुजरात में इंका का शासन था और मंत्री तथा विधायक और दूसरे कार्यकर्त्ता भ्रष्टाचार के सिरताज बनते जा रहे थे। श्री मोरारजी देसाई ने छात्रों के आन्दोलन के समर्थन में आमरण अनशन भी किया। इंका सरकार झुकी और विधान सभा भंग कर दी गयी। देश को एक नयी दिशा मिली। बिहार में भी छात्र आन्दोलन शुरू हो गया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने इन्दिरा गांधी (कांग्रेस) द्वारा देश की दुर्दशा को बढ़ते देख उसे समग्र क्रांति (उत्थान) के लिए छात्रों का पथ-प्रदर्शन किया। श्री जयप्रकाश नारायण गैर राजनीतिक विभूति थे। उनके कारण छात्र आन्दोलन गैर राजनीतिक रहा। जे० पी० के नेतृत्व से देश में एक नयी हलचल प्रारम्भ हुई। बुद्धिजीवियों, विचारकों और बौद्धिकों में जे० पी० की 'समग्र क्रांति' के पक्ष-विपक्ष का विश्लेषण बड़ा जोर पकड़ गया। चौधरी चरण सिंह आन्दोलन के समर्थक नहीं थे। वे स्वतंत्र सत्ता की राजनीति में हड़ताल, घेराव, प्रदर्शन, इत्यादि को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहते थे। वे सभी विरोधी दलों को एक दल में खड़ा करने को आतुर थे। वे इस सत्य को जानते थे कि इंका

विरोधी दलों में वोटों के बंट जाने के कारण अल्पमत से जीत कर अपना बहुमत बना लेती है। इंका औसत 32 या 33 प्रतिशत वोटों के बल पर ही कब से बहुमत में चली आ रही थी। उसके कुशासन से देश को त्राण दिलाने के लिए विपक्ष का एक विकल्प बनाना जरूरी था। चौधरी चरण सिंह के इस चिन्तन के महत्त्व को लोक नायक ने सराहा। इंका के लम्बे कुशासन के बाद समग्र क्रांति लाने के लिए भी विरोध पक्ष का एकीकरण जरूरी था। लेकिन जे० पी० विरोधी पक्षों का एक संघीय दल चाहते थे। जब कि चौधरी चरण सिंह एक दल। कुछ विरोधी राजनीतिक संयुक्त मोर्चे को भी प्रश्रय दे रहे थे। वह गुजरात के चुनावों में विफल सिद्ध हुआ। तब एकीकरण के पक्ष में वातावरण बनने लगा। 16 मार्च 1975 को दिल्ली के लाखों नर-नारियों का एक विराट जुलूस निकला। उसका लोकनायक जयप्रकाश नारायण, चौधरी चरण सिंह, सरदार प्रकाश सिंह बादल, नाना जी देशमुख और श्री राज नारायण ने नेतृत्व दिया। "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है" का ऐसा गगनभेदी नारा दिल्ली में गूंजा कि सत्ता कांग्रेसी भयभीत हो गये। इसी बीच श्रीमती इन्दिरा गांधी के विरुद्ध श्री राजनारायण द्वारा दाखिल की गई चुनाव याचिका पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने रायबरेली के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया और श्रीमती गांधी को चुनाव में भ्रष्ट तरीकों को अपनाने के लिए छः वर्ष के लिए चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित कर दिया। 25 जून को दिल्ली के रामलीला मैदान में विशाल जनसभा में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की मांग की। अपने हाथ से सत्ता जाते देखकर 26 जून, 1975 को श्रीमती गांधी ने मंत्रिमंडल की पूर्व स्वीकृति के बिना आपात स्थिति घोषित कर दी। सभी राष्ट्रीय नेता रातों-रात गिरफ्तार कर लिए गये। वृद्ध और बीमार लोकनायक भी गिरफ्तार कर लिए गये। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता इस हद तक छीन ली कि गिरफ्तारियों की सही खबर न छपे। इसके लिए दिल्ली के राष्ट्रीय दैनिक पत्रों की रात में बिजली काट दी गयी। जे० पी० की गिरफ्तारी पर सारा देश क्रुद्ध हो उठा। असंख्य देशभक्तों को जेल में ठूंस दिया गया। उन्हें कानून का दरवाजा खटखटाने का भी अधिकार नहीं था। वह यह भी नही पूछ सकते थे कि उनका अपराध क्या है? उन्हें बाद में संसद के एक प्रश्नोत्तर से पता चला कि जीने की भी स्वतंत्रता नहीं रही।

चौधरी चरण सिंह को कैदी बनाकर तिहाड़ जेल में बन्द कर दिया गया।

सत्ता का मोह किसी भी कम नजर वाले को आततायी बना देता। ऐसा आततायी कि वह जय प्रकाश नारायण को भी गिरफ्तार कर ले, विशुद्ध तानाशाह ही हो सकता था। आज भी यह सवाल लाखों की जबान पर है कि अगर गांधी जी जीवित रहे होते और भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए न्यायपालिका के निर्णय के अनुरूप आचरण करने की मांग करते तो क्या वे भी गिरफ्तार नहीं कर लिए गये होते?

भादों की अमावस्या

अष्टग्रह

स्वतंत्र भारत के इतिहास में 26 जून 1975 का काला दिन कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। जालियांवाला बाग के जनरल डायर के पाशविक हत्याकाण्ड के बाद ऐसा दिन हिन्दुस्तान के अर्वाचीन इतिहास में दूसरा नहीं बीता था। उस दिन केवल कुर्सी पर बने रहने के लिए लोकतंत्र की हत्या कर दी गयी तथा पुलिस और सेना के बल पर देश पर तानाशाही थोंप दी गयी। विभाजित हिन्दुस्तान के दूसरे भाग में फौजी तानाशाही पहले से चल रही थी। पाकिस्तान से स्वतंत्र हुए बांग्ला देश और बर्मा में फौजी जनरलों का एकतंत्रीय शासन था। उत्तरी पड़ोसी नेपाल में राजतंत्र था ही। उसके आगे तिब्बत में चीनी साम्यवादी आ धमके थे। बाहर अफ्रीका और मध्य एशिया के कितने देशों में तानाशाही शक्तियां उभर रही थीं। उनका सबसे निकृष्टतम उदाहरण उगांडा में ईदी अमीन की तानाशाही था। इसे अगर वातावरण का प्रभाव नहीं तो महान आश्चर्य ही मानना पड़ेगा कि महात्मा गांधी के देश में पंडित जवाहर लाल नेहरू की सुपुत्री ने तानाशाही की काली अमावस्या ला दी। देश की उससे भारी अप्रतिष्ठा और दुर्गति हुई। श्रीमती इन्दिरा गांधी को उदार-शिक्षा पाने का सुअवसर नहीं मिला था। फिर भी उनकी घरेलू शिक्षा पंडित जवाहर लाल नेहरू की देखरेख में हुई थी। जवाहर लाल जी ने दासता काल के संघर्ष के दिनों में साफ-साफ कहा था कि "जो सरकार मीसा और क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेंट एक्ट पर निर्भर हो, जो समाचार पत्रों और साहित्यिक प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगाती हो, जो अनेकानेक संस्थाओं को अवैध घोषित कर काम से रोकती हो, तथा जो नागरिकों को बिना न्यायाधिकरण में मुकदमा चलाये जेलों में बन्द रखती हो, वह एक दिन भी रहने योग्य नहीं।" हिन्दुस्तान के बौद्धिक तथा राजनीति विशारद ही नहीं, संसार भर के सभी प्रमुख राजनीति-शास्त्री इस आश्चर्य से सुन्न रह गये। हिन्दुस्तान विश्व का अप्रतिम प्रजातंत्र था। अनादि काल से यहां पंचायत की परम्परा चली आ रही थी। जातीय पंचायतों की वह प्राचीन परम्परा दासता काल में भी टूटी नहीं। अचानक मानों एक सनक ने उस सनातन परम्परा को चकनाचूर कर दिया। जब पंचायत राज की जड़ पर ही कुठाराघात हुआ, तब रामराज्य की ओर देश की यात्रा की ललक ही कहां शेष रहती !

हुआ यह कि बारह जून को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के विरुद्ध श्री राजनारायण की चुनाव याचिका को स्वीकार कर उनका चुनाव अवैध घोषित कर दिया । साथ ही चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने का अपराध सिद्ध हो जाने के कारण श्रीमती गांधी को 6 वर्षों तक सार्वजनिक चुनाव में भाग लेने से बहिष्कृत कर दिया गया। श्रीमती गांधी एक दशक से अधिक वर्षों तक प्रधान मंत्री रह कर एकतंत्रीय बन गयी थीं। पुरानी राष्ट्रीय कांग्रेस उन्हीं के कारण कई नामों में बंट चुकी थी। सत्ता ने उन्हें निरंकुश बना दिया था। वह येन-केन-प्रकारेण प्रधान मंत्री पद पर बनी रहना चाहती थीं। उदार शिक्षा की कमी से वह ठीक अंग्रेजों की तरह भेदभावपूर्ण नीतियों का अनुसरण कर देश के दूरगामी हितों के खिलाफ अपना "वोट बैंक" बढ़ाने के लिए तरह-तरह का नाटक किया करती थीं। देश के प्रबुद्ध विचारकों की सहानुभूति वह खो चुकी थीं। उनके विरुद्ध उच्च न्यायालय के आदेश से देश भर में खुशी की लहर बह गयी। प्रबुद्ध विचारकों और विरोधी दलों ने श्रीमती इन्दिरा गांधी से उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार प्रधान मंत्री पद से हट जाने की मांग की। न्यायोचित रास्ता भी यही था कि श्रीमती गांधी अपने दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को अपने स्थान पर निर्वाचित कराकर प्रधान मंत्री पद से हट जातीं तथा उच्च न्यायालय के निर्णय से अगर वे संतुष्ट नहीं थी तो उच्चतम न्यायालय में अपील करतीं और अपील जीतने पर दुबारा अपने दल का नेतृत्व सम्भाल लेतीं। उन्होंने श्री चेन्ना रेड्डी को एक ऐसे ही निर्णय के विरुद्ध अपील करने के बाद भी केन्द्रीय मंत्री पद से त्यागपत्र देने को बाध्य किया था। प्रधान मंत्री पद के लिए तो अदालत का निर्णय होते ही त्यागपत्र दे देना जरूरी था। इस सही प्रक्रिया से देश उस कलंक की विभीषिका से बच जाता, जो उसे अकारण ही सहना पड़ा। श्रीमती इन्दिरा गांधी को ऐसा लगता है कि अपने दल पर भी विश्वास नहीं था कि एक बार कुर्सी छोड़ने पर वह उन्हें वापिस ले या नहीं। उन्होंने प्रधान मंत्री पद से त्यागपत्र देने की कोई चेष्टा नहीं की। उल्टे चाटुकार विदूषकों ने उनके निवास पर उनके द्वारा कुर्सी न छोड़ने का हो-हल्ला मचाया। उनका कुर्सी को न छोड़ने का इरादा भांप कर 25 जून को दिल्ली के राम लीला मैदान में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में एक अभूतपूर्व विराट प्रदर्शन हुआ। उसमें देश के जनमत ने एक स्वर से श्रीमती गांधी से कुर्सी छोड़ने की मांग की। निश्चय ही जनमत के उस अपार प्रदर्शन से श्रीमती गांधी भयभीत हो गयीं। उसी तारीख को आधी रात बीतते-बीतते उन्होंने आपात स्थिति (इमरजेंसी) लागू करने की घोषणा कर दी। अपनी घबराहट में वह यह भी भूल गयीं कि सन् 1971 में पाकिस्तानी आक्रमण पर लागू की गयी आपात स्थिति अभी तक हटायी नहीं गयी थी। वह उसी को सक्रिय बना सकती थीं। लेकिन प्रधानमंत्री की कुर्सी से चिपके रहने के लिए उन्होंने नयी इमरजेंसी लगाना जरूरी माना। इस तरह अकारण ही उन्होंने लोकतंत्र की हत्या

कर दी। आपातकाल की घोषणा शुद्ध तानाशाही थी, क्योंकि श्रीमती गांधी ने मन्त्रि-मंडल की पूर्व सहमति के बिना ही वह घोषणा की। परिस्थितियों से यह आभास मिलता है कि तत्कालीन राष्ट्रपति को भी एक प्रकार से आपात स्थिति लागू करने के लिए विवश किया गया। संविधान में आपात स्थिति घोषित करने का अनुच्छेद 352 में यह विधान है—"अगर राष्ट्रपति संतुष्ट है कि हिन्दुस्तान या हिन्दुस्तान के किसी भी भाग में कोई जोखिम है या किसी युद्ध, आक्रमण या आन्तरिक शान्ति भंग से कहीं अव्यवस्था पैदा हो रही है, तब वह आपात स्थिति (इमरजेंसी) घोषित कर सकता है।" देश भर में ऐसी कोई बात नहीं थी। आपात घोषणा का न तब कोई औचित्य था न बाद में उत्पन्न हुआ। उस अप्रत्याशित और अवांछनीय घोषणा से सारा देश ही नहीं, श्रीमती गांधी के मन्त्रिमंडल के सदस्य भी स्तब्ध रह गये। देश भर में अभूतपूर्व आतंक छा गया। दिल्ली में उस आतंक को और अधिक गहरा बनाया गया। घोषणा के साथ ही समाचार पत्रों और समाचार एजेन्सियों की बिजली काट दी गयी, जिससे कहीं सही समाचार नहीं पहुंचे। रात को घोषणा की गई और उसके सवेरे आतंकित केन्द्रीय मंत्रि-मण्डल की बैठक बुलाकर आपात काल की स्वीकृति ली गयी। यह सर्वथा असंवैधानिक प्रक्रिया थी, जैसा कि शाह कमीशन ने बाद में निर्णय दिया। उसी रात देश के सर्वोच्च नेता जिन पर किसी देश के इतिहास को चिरकाल गर्व रहेगा, और जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी के कदम से कदम मिलाकर संघर्ष किया था, गिरफ्तार किए गये। लोकनायक जयप्रकाश बन्दी बना लिये गये। जे० पी० महात्मा गांधी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू से कम सुविख्यात और श्रेष्ठकोटि के देशभक्त नहीं थे। हिन्दुस्तान ही नहीं संसार भर के राजनीतिज्ञों में उनका एक विशिष्ट स्थान था। श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की मांग करते हुए उन्होंने सार्वजनिक रूप से यह कहा था कि सेना और पुलिस के जवानों का यह कर्तव्य है कि वे अन्यायपूर्ण और गलत आदेशों को न मानें। श्रीमती इन्दिरा गांधी की तत्कालीन मानसिकता में उनके द्वारा ऐसा किये जाने की अपेक्षा हो गयी थी। सैनिक कानून में भी गलत आदेशों को न मानने का उल्लेख है। हर सभ्य राष्ट्र की सेना और पुलिस में यह अधिकार सार्वजनिक हित में प्रदत्त किया गया है। अंग्रेजों ने सेना के कानून में यह विधान रचा था। जे० पी० ने आजादी के बाद से किसी हिंसात्मक उपद्रव का समर्थन नहीं किया था। वे "संपूर्ण क्रांति" के प्रतिपादक थे, देश के महानतम समाजवादी विचारक थे। श्रीमती गांधी जे० पी० के नेतृत्व में कुछ दिनों पहले हुए छात्र आन्दोलन से उनके खिलाफ थीं। उस आन्दोलन में बिहार सरकार ने जे० पी० पर लाठी वर्षा की थी, जैसा अंग्रेजी शासन ने लाला लाजपत राय पर किया था। जे० पी० के अतिरिक्त उसी रात मोरार जी देसाई और चौधरी चरण सिंह को भी बन्दी बना लिया गया। मोरार जी देसाई के नेतृत्व में गुजरात में छात्र आन्दोलन हो चुका था। उसके बाद गुजरात में चुनाव हुए

थे, जिसमें इन्दिरा गांधी की पार्टी को हार खानी पड़ी थी। श्री देसाई ने संसद में गुजरात आन्दोलन के समर्थन में भूख हड़ताल की थी। चौधरी चरण सिंह के विरुद्ध ऐसी कोई साधारण सी बात भी नहीं थी। उनका तो सिद्धान्त रहा है कि स्वतंत्रता के बाद राजसत्ता के विरुद्ध सत्याग्रह, भूख हड़ताल, घेराव आदि अनुचित कदम हैं। राज सत्ता प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली से ही बदली जानी चाहिए। किन्तु उन्हें भी 26 जून के सवेरे उत्तर प्रदेश निवास, दिल्ली में गिरफ्तार कर लिया गया, जहाँ वे लखनऊ से आकर ठहरे थे। इस तरह देश के स्वतंत्रता संघर्ष और उसके बाद के तीनों सर्वोच्च नेता जेलों में ठूंस दिए गये। उनके अतिरिक्त देश भर के सभी वे राजनैतिक नेता, जो श्रीमती गांधी की नीतियों से मतभेद रखते थे, बन्दी बना लिए गये। संसद और विधान सभाओं के सदस्यों को भी रातोंरात पकड़ लिया गया। उन सरकारी कर्मचारियों को भी नहीं बख्शा गया, जो यूनियन आदि के पदाधिकारी थे या जिनका किसी भी विरोधी दल या संस्था से किंचित भी सम्पर्क था। साहित्यकार, विद्वान और पत्रकारों को भी, जो जे० पी० की सम्पूर्ण क्रांति या विरोधी दल के सिद्धान्तों के पक्षधर थे, गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजी काल के अत्याचारों के बाद ऐसा जघन्य अत्याचार आजाद भारत में कभी भी नहीं हुआ था। बांग्लादेश (तब पूर्वी पाकिस्तान) में बुद्धिजीवियों के प्रति पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री भुट्टो ने ऐसा पाशविक अत्याचार किया था। सन् 1942 में "भारत छोड़ो" आन्दोलन में विदेशी सरकार के अनुसार कुल साठ हजार आदमी बन्दी बनाकर जेलों में रखे गये थे। आपात काल में संसद में दिये गये सरकारी बयान के मुताबिक एक लाख बीस हजार आदमी बन्दी बनाये गये। ऐसे मान्य कांग्रेसी भी बन्दी बनाये गये, जो श्रीमती गांधी के विरोधी नहीं थे, किन्तु जिन्होंने उन्हें पत्र लिखकर आपात काल हटाने की मांग की। पंजाब के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता तथा भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री भीमसेन सच्चर को जो देश के राजदूत और राज्यपाल रह चुके थे, ऐसा ही पत्र लिखने के कारण नजरबन्द कर लिया गया। अंग्रेजी काल की तरह आपात काल में गिरफ्तार लोग किस जेल में रखे गये हैं, यह उनके परिवारों को भी नहीं बताया गया। यह भी नहीं बताया गया कि उनका अपराध क्या था? मीसा (मेन्टिनेंस ऑफ इन्टरनल सिक्योरिटी एक्ट) में गिरफ्तार लोगों को पहले अदालत में याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार था। मीसा में संशोधन करके वह अधिकार छीन लिया गया। संविधान में मूल अधिकारों में प्रदत्त उच्च अथवा उच्चतम न्यायालय में भी मीसाबन्दी या उसके परिवार का सदस्य उसकी गिरफ्तारी के विरुद्ध याचिका नहीं प्रस्तुत कर सकता था। बन्दी जन के परिवारों को काफी दिनों तक किसी प्रकार का जीवन-निर्वाह भत्ता भी नहीं दिया गया। उन सरकारी कर्मचारियों के परिवारों और बच्चों का अनुमान लगाइये, जो बन्दी बना लिए गये थे। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर दिया गया।

कोई प्रतिवाद तक नहीं कर सकता था। यहां तक कि अगर पुलिस का कोई अधिकारी अपने व्यक्तिगत कारणों से बन्दूक या पिस्तौल से किसी को मार डाले या उसकी चोट खाकर कोई मर जाए तो वह उसका कारण नहीं पूछ सकता था। भारत सरकार ने अपने एटार्नी जनरल द्वारा उच्चतम न्यायालय में यह बहस करायी थी। इससे अधिक तानाशाही और निरंकुशता क्या हो सकती थी। जे० पी० महान के संग जेल में दुर्व्यवहार और एकान्तवास पाशविकता की हद मानी जाएगी।

अखबारों की आजादी छीन ली गयी। आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशन निषेध अधिनियम 1976 जैसा समाचार विरोधी कानून अंग्रेजी शासन के सन् 1920 के इसी नाम के अधिनियम से कहीं कठोर और ज़ालिम था। इतना क्रूर सेंसर अंग्रेजी काल में भी नहीं लगा था। सरकार की साधारण से साधारण आलोचना भी बन्द कर दी गयी। पूर्व स्वीकृति के बिना कोई समाचार छप ही नहीं सकता था। किसी ने भूल से भी उल्लंघन किया तो उसे सीधे जेल में डाल दिया गया। श्री बी० जी० वर्गीज़, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक को पत्र के मालिक बिड़ला से बर्खास्त कराया गया। सुप्रसिद्ध पत्रकार कुलदीप नैय्यर, तब 'इण्डियन एक्सप्रेस' के सम्पादक को गिरफ्तार कर लिया गया। 'फाईनेन्सियल एक्सप्रेस' में कविगुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर के प्रसिद्ध गीत··· "वह देश जहां मस्तिष्क में किसी कारण भय नहीं समाता" को छपने से मना कर दिया गया। श्री जवाहर लाल नेहरू ने आजादी के पहले समाचार पत्रों की निर्भीकता और स्वतंत्रता को प्रजातंत्र की रीढ़ बताया था। उन्होंने कहा था 'लाख बेहतर होगी, समाचार पत्रों की स्वतंत्रता भी, जिससे सरकार विशेष के लिए खतरा उत्पन्न हो, बनिस्बत उन पर सेंसर लगाने के उनकी पुत्री यह सीख कतई भूल गयीं।

एक पूरी फिल्म इसलिए बन्दी कर दी गयी कि उसकी नायिका की चाल श्रीमती गांधी की चाल से कुछ मिलती जुलती थी। संजय गांधी ने सुप्रसिद्ध सिने गायक श्री किशोर कुमार के गायन को रेडियो पर बन्द करा दिया, क्योंकि श्री कुमार ने इमरजेंसी का प्रचार करने से मना कर दिया था। वही कवि सम्मेलन और मुशायरे हो सकते थे, जो इमरजेंसी और संजय गांधी के चार सूत्री कार्यक्रम पर आधारित हों। गरीब लेखकों और साहित्यकारों का हाल मत पूछिए। 'इस्टर्न इकोनोमिस्ट' में महात्मा गांधी की एक तस्वीर छपी। वह नोआखाली यात्रा की थी। वह सेंसर हो गयी कि उसका आपात विरोधी अर्थ न निकाला जाय। इससे भी हास्यास्पद एक दूसरा उदाहरण सुनने में आया। पटना में गंगा घाट पर एक साधू "नारायण, नारायण" का जाप किया करता था। किसी कम पढ़े लिखे खुफिया इंस्पेक्टर ने उसे जयप्रकाश नारायण का जाप समझा। उस साधू को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया। तानाशाही शेर की सवारी है। तानाशाह इतना भयभीत रहता है कि वह शेर से कभी उतरता नहीं कि उतरने पर कहीं उसे शेर ही न खा जाय। तानाशाही से भी अधिक खतरनाक

तानाशाही की प्रवृत्तियां होती हैं। जन मानस को वह भयंकर से भयंकर अत्याचारों से भी दबा नहीं पाता। मगर उसकी यही कोशिश रहती है। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने तो हद कर दी जब संविधान में यह संशोधन कराया, जिसके द्वारा चुनाव याचिका हारने के बाद प्रधान मंत्री के विरुद्ध चुनाव की याचिका दाखिल करने की सारी प्रक्रिया पूर्व काल से बदल दी गयी। कानून यह बना कि प्रधान मंत्री के विरुद्ध चुनाव की याचिका अदालत में हो नहीं सकती। इस तरह उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ श्रीमती गांधी की अपील पर यह निर्णय दिया गया कि उपरोक्त कानून में उन्हें अपील सुनने का अधिकार ही नहीं। यह ऐतिहासिक कुकृत्य हुआ। नतीजा यह है कि इलाहाबाद हाईकोर्ट का फैसला वाद बिन्दुओं पर अपील से अब तक रद्द नहीं हुआ। संशोधित कानून के बाद श्रीमती गांधी को उसे रद्द कराने की जरूरत ही नहीं पड़ी। चौधरी चरण सिंह ने अपने ऐतिहासिक सिंहनाद में (परिशिष्ट-स) इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि "संसार भर में ऐसी कोई दूसरी मिसाल नहीं।"

शाह कमीशन ने जांच के पश्चात् इस विषय पर जो रिपोर्ट दी वह पढ़ने से सम्बन्ध रखती है। श्री शाह भारतवर्ष के जाने माने भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश थे। उन्होंने आपात काल की घोषणा की सारी कार्यवाही को असंवैधानिक और निरंकुशता का प्रहार बताया। उस रिपोर्ट का प्रचार-प्रसार श्रीमती गांधी ने दुबारा सत्ता में आकर रोक दिया। लेकिन उन फाइलों को इतिहास की आंखों से कब तक छिपा कर रखा जा सकेगा?

तानाशाह अपने को राष्ट्र का प्रतीक मान बैठता है। उसकी मानसिकता विकृत हो जाती है। अपने विरुद्ध साधारण से साधारण बात को वह राजद्रोह समझता है। वह यह सच्चाई से मानने लगता है कि वही राष्ट्र का रक्षक तथा उद्धारक है। श्री एच० एन० बहुगुणा के अनुसार श्रीमती गांधी—"पैरोनाइया" नामक रोग से ग्रसित हैं। इस रोगी के मन में यह धारणा सांस की तरह रहती है कि सभी उसके खिलाफ षड्यंत्र रच रहे हैं। हर तानाशाह में यह रोग उभरता है। यह प्रवृत्ति कुछ काल पहले प्रकट हुई थी, जब इन्दिरा कांग्रेस के अध्यक्ष श्री देवकान्त बरूआ ने यह घोषणा की थी कि "इन्दिरा इज़ इण्डिया और इण्डिया इज़ इन्दिरा।" हिटलर जैसे तानाशाह के बड़े से बड़े विदूषक ने ऐसी उक्ति नहीं कही होगी। देश किसी भी व्यक्ति से, चाहे वह देवदूत ही क्यों न हो, बहुत बड़ा होता है।

दूसरे देशों में जहां अपरिहार्य कारणों से आपात स्थिति की घोषणा की गयी, वहां एक महीने या अधिक से अधिक दो महीने के लिए की गयी। यहां वह साल भर से ऊपर लागू रही। विकृत मानसिकता के अतिरिक्त इसका दूसरा क्या कारण हो सकता है? ऊपर से झूठा दावा किया गया कि आपात काल में काम चतुर्दिक अच्छा हुआ। चौधरी साहब ने अपने सिंहनाद से इस खोखले दावे को बेनकाब कर दिया है।

इस विषय में यहां इतना ही कहना समीचीन होगा कि देशभक्त राष्ट्रनायक गुलाब के फूल की तरह शुरू से आखिर तक, बल्कि बहुत बाद तक, अपना सौरभ बिखेरता है। उसके लिए किसी विशेष परिस्थिति की जरूरत नहीं। कागज के फूलों से खुशबू नहीं आ सकती। विशेष परिस्थितियों का औचित्य विदूषक और घमण्डियों के लिए है, जैसे यह दावा कि "मेरे पिता नेहरू जी साधू पुरुष थे, राजनीतिज्ञ मैं हूं।" इस घनी घोरी देश की विश्व विश्रुत संस्कृति में यह दावा इतना निकृष्ट है कि इस पर कोई भी टिप्पणी अक्षम्य होगी। केवल इतना कहना जरूरी है कि किसी देश में सुव्यवस्था और सच्चा अनुशासन सहयोग और हार्दिकता से आता है, आतंक से कदापि नहीं। आपात काल में आतंक जरूर व्याप्त रहा। औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा शिकोह का कत्ल कर ऐसा ही भय पैदा किया था। उससे मुगल साम्राज्य का ही विनाश हो गया।

तो चौधरी चरण सिंह तिहाड़ जेल में बन्द कर दिये गये। वह महात्मा गांधी के अनुयायी हैं और उन्हीं की तरह नैतिकतावादी। ऐसे आदर्श मानव और देश गौरव जननायक को अपनी विचित्र मानसिकता में श्रीमती गांधी जेल की यातना न पहुंचाती तभी आश्चर्य होता। लोकनायक जे० पी० और मोरार जी देसाई को एकान्तवास में घुलाया गया। जे० पी० अस्वस्थ थे, उनकी पीड़ा दारुण साबित हुई। उन्होंने अपने पुराने सहायक की मांग की तो वह मांग भी अस्वीकृत कर दी गयी। जे० पी० के संग जो अमानुषिक व्यवहार किया गया, वह उन्हीं के शब्दों में यह है—"नजरबन्दी के चार महीने मैं बिलकुल अकेला रहा। यह अकेलापन ही मुझे सबसे अखरने वाली बात थी। इस दृष्टि से इन्दिरा सरकार का मेरे साथ व्यवहार विदेशी अंग्रेजी सरकार से बुरा रहा। क्योंकि सन् 1942 में डा० राम मनोहर लोहिया लाहौर में लाये गये तो हर दिन एक घंटे तक उनसे मिलने और बातचीत करने की इजाजत मुझे मिली थी।... अचानक 26 सितम्बर को पैर में भयानक दर्द हुआ। ऐसा कभी नहीं हुआ था। सरकार ने 12 नवम्बर को घबराकर मुझे तब रिहा किया, जब उन्हें विश्वास हो गया कि रोग असाध्य है और मैं थोड़े ही दिन जीवित रहने वाला हूं। मेरे गुर्दे बेकार हो गये। पहले कोई रोग नहीं था।"

चौधरी चरण सिंह को भी तिहाड़ जेल के "बी-क्लास" श्रेणी के एक कमरे में रखा गया, जिसमें हवा के आने-जाने के लिए खिड़की या झरोखा नहीं था। कमरा 10×16 फीट का था। गुसलखाना भी निहायत छोटा 4 फीट×6 फीट का था। बाहर से हवा न आने के कारण उस कमरे में गर्मी और शीत का भयंकर प्रकोप रहता था। अस्वास्थ्यकर और बीमारी से ग्रसित हो जाने की वहां पूरी सम्भावना थी। गर्मियों में हवा इतनी गर्म हो जाती थी कि उसमें रहा ही नहीं जा सकता था। कमरे से लगा बरामदा नहीं था, जिससे बरसात में बड़ा कष्ट होता था। कमरे की छत भी

टूटी-फूटी थी। जेल के अधिकारी चौधरी साहब के प्रति श्रद्धा-आदर का भाव रखते थे, लेकिन वे विवश थे। तत्कालीन राज्यपाल श्री संजय गांधी के चंगुल में थे। जेल के अधिकारी बहुत कुछ कर नहीं सकते थे। टूटे-फूटे प्लास्टर की थोड़ी बहुत उन्होंने मरम्मत करा दी। चौधरी चरण सिंह शिकायत करने वाले व्यक्ति थे नहीं। लेकिन स्थिति से परेशान होकर दिल्ली के उप-राज्यपाल को उन्होंने उसके विषय में लिखा। उन्होंने यह साफ कह दिया था कि चूंकि वे सजायाफ्ता कैदी नहीं थे, इसलिए उन्होंने वह पत्र लिखा। तिहाड़ जेल में राजनैतिक बन्दियों की दशा जानबूझ कर खराब रखी जाती थी। राजनैतिक कैदियों ने अपनी स्थिति को सुधारने के बारे में मांग की तो उन पर लाठियों की वर्षा हुई। चौधरी चरण सिंह ने क्षुब्ध होकर जेल में दिनांक 3 अक्तूबर से तीन दिन का प्रतीकात्मक अनशन किया।

जेल के एकान्त और सूनेपन में कितने महान राजनीतिज्ञों ने असाधारण प्रतिभा का काम किया है। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी विश्व विश्रुत किताबें जेलों में ही लिखीं। चौधरी चरण सिंह ने भी अपनी 'इकानामिक नाईटमेयर आफ इण्डिया' की रूपरेखा जेल में ही परि-मार्जित की। उसके परिच्छेदों को उन्होंने वहीं लिखना शुरू किया। जेल में उनके साथ दिल्ली नगर निगम के माननीय सदस्य श्री पी० एन० सिंह भी राजनैतिक कैदी थे। उन्होंने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि चौधरी साहब की मुख्य व्यस्तता जेल के अन्दर किताब लिखने की थी। एक किताब को वे जेल जाने के पूर्व ही प्रारम्भ कर चुके थे। उसे लिखने में वह अपना अधिक समय लगाया करते थे। लिखने का कार्य प्रातः 5 बजे से आठ बजे तक और शाम को आठ बजे के बाद। उस किताब को लिखने के लिए वह बहुत सी सामग्री बाहर से मंगाया करते थे। किताब अंग्रेजी भाषा में लिख रहे थे। वह गांधीवादी अर्थनीति पर उनकी विवेचना थी। जब भी परिवार के लोग आते थे, लिखा हुआ भाग टाइप करने को बाहर भेज देते थे। यह क्रम जब तक वे जेल में रहे बराबर चलता रहा।

जेल में चौधरी साहब ज्योतिष विषयक साहित्य भी मंगाकर पढ़ा करते थे। ज्योतिष शास्त्र में उन्हें अगाध विश्वास नहीं तो दिलचस्पी हमेशा रही है। श्री पी० एन० सिंह के उक्त संस्मरण के अनुसार वे कहा करते थे कि वे दीर्घायु होंगे और उनकी मनोकामना एक बार इस देश को नील नदी से लेकर तिब्बत के उत्तरी छोर तक तथा श्रीलंका के तट से लेकर कश्मीर के अन्तिम छोर तक देखने की थी। उनकी बृहत्तर अखण्ड भारत की कल्पना सच हो चाहे नहीं, वह उनकी देशाभिमान की उत्कट लालसा को व्यक्त करती है।

इसी तिहाड़ जेल में 8 फरवरी 1976 को चौधरी चरण सिंह ने जेल के अपने दूसरे साथियों सरदार प्रकाश सिंह बादल, सरदार आत्मा सिंह, जयपुर के राजकुमार

भवानी सिंह, नाना जी देशमुख, मदरलैण्ड के सम्पादक श्री मलकानी, राजमाता महारानी सिन्धिया आदि से विचार-विमर्श कर इस योजना को रूप दिया कि सभी विरोधी दलों को मिलाकर एक नया दल बनाया जाय। जेल में एक दूसरे से मिलने की सुविधा नहीं थी। फिर भी दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे तक यह बात पहुंचायी गयी। परिकल्पना ने जोर पकड़ा। इसकी पहली बैठक तिहाड़ जेल के "बी" श्रेणी के वार्ड नं० 14 में चौधरी साहब की अध्यक्षता में हुई। विचार का बीज बोया गया। सब अपने-अपने ढंग से इस सोच में लगे।

'एमनेस्टी इंटरनेशनल' के सुझाव पर मार्च 1976 को वह जेल से अचानक रिहा कर दिए गये। उनके परिवार वर्ग को नया जीवन मिला। परिवार वर्ग को सन्देह था कि उच्च नेताओं को अलक्षित रूप से धीरे-धीरे जेलों में विष दिया जा रहा था।